अंक : 2, जून 2015

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

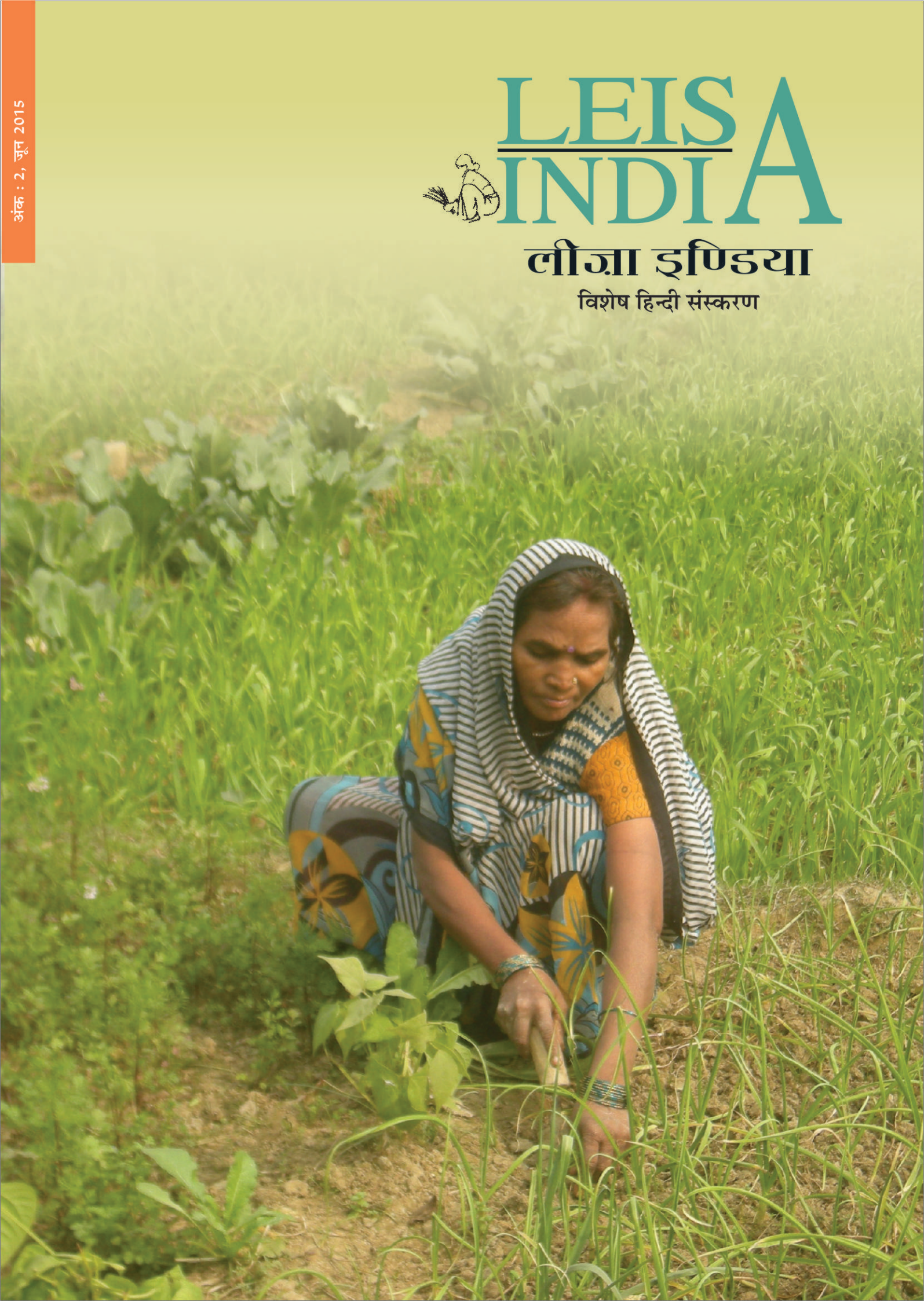

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
जून 2015, अंक 2

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित की जा रही है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर- 273001
फोन : +91-551-2230004,
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज़, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085, भारत
फोन : +91-080-26699512,
+91-080-26699522
फैक्स :+91-080-26699410,
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन-अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन, ब्राज़ीलियन एवं चाइनीज़ संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गाँव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

सामूहिक कार्य से बहुत से फायदे : सामाजिक उद्योग मॉडल.....

प्रमेल गुप्ता

मध्य प्रदेश के किसानों ने पर्यावरणसम्मत एवं टिकाऊ पद्धतियों को अपनाते हुए एक सामाजिक उद्यम माडल को तैयार कर अपनी फसल उत्पादकता को उन्नत किया है, साथ ही उनकी आय में भी बेहतर वृद्धि हुई है। ये सामाजिक उद्यम माडल किसानों को न सिर्फ कम लागत में बेहतर आय प्रदान कर रहे हैं, वरन् इससे यहां की जैव विविधता भी सुरक्षित एवं संरक्षित हुई है।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, जून 2015

5 सामूहिक कार्य से बहुत फायदे : सामाजिक उद्योग मॉडल.....
प्रमेल गुप्ता

8 कृषि पारिस्थितिकी परिदृश्य
दीपायन डे

12 विश्व के चावल संकट को दूर कर सकती है भारतीय.....
भारत डोगरा

15 खाद्य सुरक्षा के लिए गृहवाटिका
सुमन सहाय

16 स्थानीय बीज प्रणाली से समृद्ध होती खाद्य सुरक्षा.....
एम. कार्तिकेयन एवं सी.एस.पी. पाटिल

कृषि पारिस्थितिकी परिदृश्य
तटीय सुन्दरवन में स्वदेशी चावलों का संरक्षण

दीपायन डे

ढांचागत एवं तकनीकी ऐसी बहुत सी समस्याएं हैं, जिनके कारण लघु किसान चावल की संकर एवं उच्च उत्पादक प्रजातियों की खेती के लिए रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं। इससे वैश्विक स्तर पर मान्यता दिलाने तथा स्थानीय प्रजातियों को अधिक स्थाईत्व पूर्ण तरीके से प्रचारित करने की उनकी अपनी क्षमता में भी बाधा पहुंच रही है। विशेषकर, ज्ञान तथा तकनीकी लागत तक पहुंच बनाने में समस्याएं आ रही हैं, जिससे उन्हें जैविक उत्पादन अभ्यासों को अपनाने तथा व्यवस्थित रखने में कठिनाई आ रही है। स्थानीय संसाधनों एवं कम लागत पर आधारित एक स्थानीय माडल विकसित करना तथा किसानों की पर्याप्त सहभागिता के साथ स्थानीय सूचना मंचों के माध्यम से उसे प्रसारित करना एक अधिक व्यवहारिक विकल्प प्रस्तुत कर सकता है।

विश्व के चावल संकट को दूर कर सकती है भारतीय वैज्ञानिक की योजना

भारत डोगरा

विश्व के मौजूदा खाद्य संकट के दौरान चावल की कमी की ओर विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है क्योंकि यह विश्व के सबसे अधिक लोगों का सबसे महत्वपूर्ण खाद्य है व विशेषकर एशिया के अनेक देशों की खाद्य व्यवस्था तो जैसे चावल पर ही आधारित है। चावल के संकट से जूझती दुनिया को समाधान पाने में भारत के चावल के शीर्ष के वैज्ञानिक स्वर्गीय डा. आर.एच. रिछारिया के विचारों व कार्य से आज भी बहुत मदद मिल सकती है, विशेषकर उनकी उस कार्ययोजना से जो उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय के विशेष अनुरोध पर तैयार की थी।

खाद्य सुरक्षा के लिए गृहवाटिका

सुमन सहाय

केरला में, राज्य सरकार द्वारा की गयी हरित शहर की पहल गति पकड़ रही है। शहरी क्षेत्रों में रहने वाले परिवार ''छत की बागवानी'' जैसे अभ्यास को अपनाते हुए फलों व सब्ज़ियों को उगाकर अपने परिवार की पोषण की जरूरतों को पूरा करने में सहायक हो रहे हैं।

स्थानीय बीज प्रणाली से समृद्ध होती खाद्य सुरखा एवं खेत अनुकूलन

एम. कार्तिकेयन एवं सी.एस.पी. पाटिल

छोटे व मोटे अनाजों के बीच प्रजाति विविधता में ह्रास की प्रवृत्ति देखी जा रही है। जबकि सरकार द्वारा की जा रही प्रजातिगत सुधार अनुसंधान शायद ही उन तक पहुंचती हो, जिसे उसकी आवश्यकता है। गैर सरकारी संगठनों द्वारा कुछ प्रयास अवश्य किये जा रहे हैं, परन्तु वे छिट–पुट हैं और बहुत छोटे पैमाने पर किये जा रहे हैं। इन सभी संस्थानों को न सिर्फ एक साथ लाने की आवश्यकता है, वरन् इस तरह से भी काम करने की आवश्यकता है कि स्थानीय बीज प्रणालियों को संरक्षित और पोषित किया जाये। प्रजातिगत सुधार अनुसंधान की दिशा में स्थानीय बीज प्रणाली को मजबूत बनाने की दिशा में रेसमिसा (RESMISA) माडल एक प्रयास है।

यह अंक...

जून, 2015 का हिन्दी लीजा अंक मुख्यतः खाद्य सुरक्षा, जैविक खेती एवं मूल्य संवर्धक खेती के साथ मोटे अनाज, गृहवाटिका एवं पारिवारिक खेती के विचारों पर आधारित लेखों के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत है। खरीफ मौसम को ध्यान में रखते हुए इसमें उन लेखों के संयोजन का प्रयास किया गया है, जो मोटे अनाजों एवं धान की खेती पर केन्द्रित हों। आज जबकि खेती की लागत दिन–प्रतिदिन महंगी होती जा रही है, लोगों के जोत छोटे होते जा रहे हैं और भूमि की गुणवत्ता में भी ह्रास होता जा रहा है, यह आवश्यक है कि लोगों के अन्दर खेती के विभिन्न हानिकारक पहलुओं पर संचेतना जगाई जाये एवं पारम्परिक व वैज्ञानिकता के समावेश के साथ नवीन तकनीकी जानकारियों को उपलब्ध कराते हुए युवा किसानों को पुनः खेती की तरफ वापस लौटाया जाये ताकि किसान एवं किसानी के अस्तित्व पर मंडरा रहे संकट को दूर करने में सफलता मिल सके।

पत्रिका का पहला लेख श्री प्रमेल गुप्ता द्वारा लिखित ''सामाजिक कार्य से बहुत से फायदे, सामाजिक उद्योग माडल की कहानी'' रसायनिक कीटनाशकों के विरूद्ध किसानों द्वारा संगठित रूप से जैविक कीटनाशकों के निर्माण एवं प्रयोग की कहानी है। इस लेख में किसान जैविक कीटनाशकों का निर्माण कर न सिर्फ अपने खेतों में प्रयोग कर रहे हैं, वरन् उसे अन्य दूसरे किसानों को बेचकर अपनी आजीविका भी सुदृढ़ कर रहे हैं। जबकि श्री दीपायन डे द्वारा लिखित दूसरा लेख ''कृषि पारिस्थितिकी परिदृश्य तटीय–सुन्दरवन में स्वदेशी चावलों का संरक्षण'' में पश्चिम बंगाल के तटीय क्षेत्र में अवस्थित सुन्दरवन में किसानों द्वारा स्वदेशी चावलों के सफलतापूर्वक अपनाये जाने की गाथा है। इस लेख में लेखक ने यह प्रस्तुत किया है कि सुन्दरवन जैसे क्षारीय भूमि वाले क्षेत्र में किसानों ने यह अनुभव किया कि पारम्परिक व देशी प्रजातियां अधिक सहनशील हैं और उनमें लागत कम लगने के कारण मुनाफा भी स्पष्ट दिखता है। इस लेख के माध्यम से यह भी प्रदर्शित किया गया है कि किसी भी प्रजाति/फसल अथवा विधि को व्यापक पैमाने पर प्रसारित–प्रचारित करने के लिए उससे सम्बन्धित सभी हितभागियों का आपस में ताल–मेल होना आवश्यक है। श्री भारत डोगरा द्वारा लिखित तीसरे लेख ''विश्व के चावल संकट को दूर कर सकती है भारतीय वैज्ञानिक की योजना'' में महान भारतीय वैज्ञानिक स्व0 डा0 आर. रिछारिया द्वारा प्रस्तुत उन विकल्पों/योजनाओं तथा उनकी प्रासंगिकता की सविस्तार चर्चा की गयी है, जिन्हें अपनाकर न सिर्फ भारत वरन् विश्व स्तर पर चावल की कमी को दूर करने में बड़ी सफलता मिल सकती है।

श्री सुमन सहाय द्वारा लिखित छोटे से लेख ''खाद्य सुरक्षा के लिए गृहवाटिका'' के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया है कि सुनियोजित ढंग से विविधता को अपनाते हुए लगायी गयी गृहवाटिका से परिवार की न सिर्फ पोषण एवं खाद्य व सुरक्षा सुनिश्चित होती है, वरन् इससे गृहणियां आय अर्जन भी कर सकती हैं। अपनी बात को पुष्ट करते हुए उन्होंने केरल की विभिन्न सरकारी योजनाओं से गृहवाटिका के जुड़ाव को प्रस्तुत किया है। जबकि स्थानीय बीज प्रणाली की उपयोगिता एवं लाभ को प्रदर्शित करता पांचवा व अन्तिम लेख श्री एम. कार्तिकेयन व श्री सी.एस.पी. पाटिल द्वारा लिखित ''स्थानीय बीज प्रणाली से समृद्ध होती खाद्य सुरक्षा एवं खेत अनुकूलन'' है जिसमें लेखक ने वर्तमान में मोटे अनाजों की घट रही प्रजातिगत विविधता के बारे में न सिर्फ चिन्ता व्यक्त की है, बल्कि यह भी बताया है कि पुराने समय में गांव एवं क्षेत्र स्तर पर कार्य करने वाली स्थानीय बीज प्रणालियां आज के समय में भी प्रासंगिक हैं और अपने बीजों को संरक्षित कर हम कृषि के बेहतर भविष्य के निर्माण में सहयोग कर सकते हैं।

अन्त में उपरोक्त सभी लेखों पर आपके विचार/सुझावों की प्रतीक्षा में...

• **सम्पादक मण्डल**

कीटों जैसे लेडी बर्ड बीटल को कीटनाशकों के प्रयोग से मारना

सामूहिक कार्य से बहुत से फायदे

सामाजिक उद्योग मॉडल की कहानी

प्रमेल गुप्ता

मध्य प्रदेश के किसानों ने पर्यावरणसम्मत एवं टिकाऊ पद्धतियों को अपनाते हुए एक सामाजिक उद्यम मॉडल को तैयार कर अपनी फसल उत्पादकता को उन्नत किया है, साथ ही उनकी आय में भी बेहतर वृद्धि हुई है। ये सामाजिक उद्यम मॉडल किसानों को न सिर्फ कम लागत में बेहतर आय प्रदान कर रहे हैं, वरन् इससे यहां की जैव विविधता भी सुरक्षित एवं संरक्षित हुई है।

मध्य प्रदेश के सिहोर जिले में स्थित विकास खण्ड बुधनी में 100 घरों का एक छोटा सा गाँव खानपुरा है। यह गाँव चारों तरफ से सघन रूप से वनाच्छादित है और यहां के लोगों की आजीविका का मुख्य स्रोत खेती है। कुछ वर्षों पहले तक यहां के किसान पारम्परिक कृषिगत पद्धतियां अपना रहे थे और उनकी प्रमुख निर्भरता रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों पर थी।

एक स्वैच्छिक संगठन व्रुती, आजीविका सन्दर्भ केन्द्र ने इस क्षेत्र में टिकाउ आजीविका को प्रोत्साहित करने के लिए कार्य करना प्रारम्भ किया और यह देखा कि छोटे, सीमान्त किसान बिना किसी भेद–भाव के अपने खेतों में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं और इसके लिए वे प्रति एकड़ 1000–3000 रू0 तक खर्च करते हैं। परिणामतः खेती की लागत बढ़ने के अतिरिक्त, रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करने के कारण कीटों में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने, कीटों के पुनर्उद्भव तथा पर्यावरण एवं खाद्य सुरक्षा सम्बन्धी जोखिम जैसी समस्याएं भी प्रमुखता से उत्पन्न हो रही हैं।

पर्यावरणसम्मत स्थाई गतिविधियों को अपनाते हुए खेती की लागत कम करने में किसानों की मदद करने के लिए व्रुती ने स्थानीय ज्ञान के आधार पर गौमूत्र, नीम और अरण्डी के पत्तों से जैव कीटनाशक बनाकर उनका उपयोग करने हेतु किसानों को उत्प्रेरित किया। इन जैव कीटनाशकों की प्रभाविता पर बात करने के लिए प्रारम्भ में उन किसानों के साथ सम्पर्क किया गया, जो लम्बे समय से रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग कर रहे थे और उसके प्रति उनका विश्वास था। एक व्यवस्थित तरीके को अपनाते हुए जैव कीटनाशकों के प्रयोग के लाभों के ऊपर किसानों को शिक्षित व जागरूक करने का कार्य व्रुती ने सफलतापूर्वक किया। इसके साथ ही, व्रुती ने इससे सम्बन्धित व्यापार मॉडलों को तैयार करने के लिए भी किसानों को उत्साहित

अपने जैव कीटनाशक उत्पाद के साथ श्री राम कैलाश

किया। व्रुती ने ग्रामीण समुदायों में किसान क्लबों एवं स्वयं सहायता समूहों का गठन कर उन्हें संगठित होने में सहायता की। किसान समूहों के सदस्यों ने विभिन्न खेतों पर जाकर अच्छी कृषिगत गतिविधियों/अभ्यासों जैसे– एस0आर0आई0, एस0डब्ल्यू0आई0, एन0पी0एम0 एवं जैविक खेती आदि को देखा एवं सीख बनाई। सदस्यों ने संगठनों जैसे कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालयों एवं अन्य दूसरे संस्थानों का भी भ्रमण कर किसान उत्पादक संगठनों की कार्यप्रणाली को समझने हेतु वहां काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के साथ बात–चीत की।

पहल करने व अच्छी गतिविधियों को शीघ्र अपनाने वाले, सकारात्मक सोच रखने वाले तथा समुदाय द्वारा स्वीकार्य अगुवा किसानों का चयन कृषि व्यापार विकास सेवा प्रदाता के रूप में किया गया। सरकारी सेवाओं के साथ किसानों को जुड़ाव स्थापित करने में सहयोग करते हुए घर पर ही सुविधा उपलब्ध कराने के साथ ही, बाजार नियन्त्रक, प्रसार सेवाओं तथा वैज्ञानिक संगठनों के माध्यम से शोध आदि में भी इन कृषि व्यापार विकास सेवा प्रदाताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

कृषि व्यापार विकास सेवा प्रदाताओं को मास्टर ट्रेनर के तौर पर प्रशिक्षित किया गया। पंजीकृत किसानों को गौमूत्र एकत्र करने तथा जैव कीटनाशक बनाने के लिए कृषि व्यापार विकास सेवा को आपूर्ति करने, गौमूत्र तथा नीम की पत्तियों से बने जैव कीटनाशकों की उपयोगिता का आकलन करने पर भी इन सेवा प्रदाताओं को प्रशिक्षित किया गया।

प्रक्रिया

जैव कीटनाशक उत्पादन की पूरी प्रक्रिया को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है –

स्वयं सहायता समूह/किसान क्लब के स्तर पर गौमूत्र का एकत्रीकरण किया गया। 400 से अधिक परिवार गौमूत्र एकत्रित करने के कार्य में संलग्न हैं। कृषि व्यापार विकास सेवा प्रदाता स्वयं सहायता समूहों/ किसान क्लबों से गौमूत्र एकत्र कर प्रसंस्करण केन्द्रों पर पहुँचाते हैं। सभी घरों से प्रतिदिन लगभग 500 लीटर गौमूत्र एकत्रित होता है। किसानों को रू0 5 प्रति लीटर गौमूत्र की दर से भुगतान किया जाता है।

लगभग 25% किसानों ने रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एकदम बन्द कर दिया है और 50% ने अपने खेतों में कीटनाशकों का प्रयोग आधा कर दिया है इससे लोगों की उत्पादन लागत काफी घट गयी है।

त्वरित अनुकूलन का एक उदाहरण

खानपुरा गांव के एक किसान एवं कृषि व्यापार विकास सेवा प्रदाता श्री राम कैलाश यादव एक ऐसे किसान हैं, जो अनुकूलन के प्रयासों से बहुत जल्द जुड़ गये। 5 एकड़ की जोत भूमि के स्वामी 35 वर्षीय श्री राम कैलाश यादव शिक्षित किसान हैं। यह उत्सुक, मेहनतकश एवं नेतृत्वकर्त्ता का गुण रखने के साथ ही एक अच्छे उद्यमी होने की क्षमता भी रखते हैं। इनके पास 4 गाये हैं। व्रुती, संगठन से जुड़ाव के पश्चात् श्री राम कैलाश यादव ने गौमूत्र से जैव कीटनाशक बनाने का निर्णय लिया। उद्योग प्रारम्भ करने से पहले, उन्होंने नाबार्ड के सहयोग से 200 लीटर की क्षमता वाले 18 ड्रमों को लिया।

इन्होंने 15 लीटर गौमूत्र लिया और उसमें 5 किग्रा0 नीम की पत्तियां, आधा किग्रा0 शरीफा की पत्तियां तथा आधा किग्रा0 सफेद आक की पत्तियों को मिलाकर 21 दिनों के लिए रख दिया था। सभी सामग्रियों के मिश्रण में जीवाणु विषयक खमीर उठने से जैव कीटनाशक तैयार हुआ। 21 दिनों के पश्चात् 15 लीटर पानी में आधा किग्रा0 तैयार जैव कीटनाशक मिलाकर इन्होंने अपनी सोयाबीन की फसल पर छिड़काव किया। 15 दिनों के अन्तराल पर एक छिड़काव और किया।

छिड़काव के पश्चात् राम कैलाश ने पौधों में एक उल्लेखनीय अंतर देखा। पौधों की वृद्धि बड़ी तेजी से हुई। जड़ें मजबूत होकर फैलनी शुरू हो गयीं, जो एक स्वस्थ पौधे की पहचान है। पौधों पर बीमारियों का प्रकोप भी कम हुआ और पौधे बीमारियों एवं कीटों के प्रति अधिक सहनशील हुए। अनाज की गुणवत्ता बढ़ गयी। साथ ही गौमूत्र के उपयोग से मृदा उर्वरता भी बढ़ी। इससे उपज में वृद्धि हुई और तैयार पौधों से प्राप्त बीज बिना जैव कीटनाशकों के उपयोग से उत्पादित बीजों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ हुए।

इन सकारात्मक परिवर्तनों को देखने के पश्चात् उन्होंने व्यापार की दृष्टि से जैव कीटनाशक का उत्पादन करने का निर्णय लिया। पहले वर्ष में उन्होंने लगभग 2200 लीटर जैव कीटनाशक तैयार कर उससे लगभग 17600.00 रू0 का लाभ लिया। रामकैलाश द्वारा प्राप्त किये गये लाभ को निम्नवत् देख सकते हैं –

वर्ष	लागत (प्रति ली०)	उत्पादन (ली० में)	बिक्री दर	धनराशि (रु० में)	लाभ (रु० में)
2013	रु० 4	5700	रु० 12	68400	45600
2012	रु० 4	2200	रु० 12	26400	17600

जैव कीटनाशक तैयार करने के लिए श्रम की आवश्यकता नहीं होती है और इसे आसानी से तैयार किया जा सकता है। जैव कीटनाशक बनाने का खर्च बहुत ही कम है, क्योंकि इसके मुख्य तत्व नीम, शरीफा एवं सफेद आक की पत्तियां जंगलों से मुफ्त में एकत्र कर लेते हैं और गौमूत्र अपनी स्वयं की गायों से मिल जाता है। वास्तव में, राम कैलाश ने अपना यह व्यापार मात्र 200 रूपयों में शुरू किया है।

श्री दीपक कुमार, जी0एम0 जैव कीटनाशक इकाई का उद्घाटन करते हुए

खन्दवार, खानपुर एवं ओन्डिया गांवों में स्थापित तीन केन्द्रों पर प्रसंस्करण का कार्य सम्पन्न होता है। एकत्र गौमूत्र को 200 लीटर वाले प्लास्टिक ड्रम में डाल दिया जाता है। पुनः इसमें 20 किग्रा0 नीम एवं शरीफा की पत्तियों को डालने के पश्चात् ड्रम को 21 दिनों के लिए बन्द कर दिया जाता है। 21 दिनों के बाद पत्तियों से छनने के बाद जो रस निकलता है, उसे जैव कीटनाशक के रूप में उपयोग किया जाता है। प्रत्येक इकाई से लगभग 3000 लीटर जैव कीटनाशक का उत्पादन होता है। अब, कुछ स्वयं सहायता समूह गांव स्तर पर जैव कीटनाशक तैयार कर उसे गांव में ही बेचने में रूचि प्रदर्शित कर रहे हैं।

1000 किसानों को मिलाकर बनाई गयी ''नर्मदांचल किसान उत्पादक कम्पनी'' जैव कीटनाशकों को खरीद कर उनके विपणन का कार्य करती है। उत्पादक कम्पनी के रूप में कम्पनीज एक्ट के तहत् पंजीकृत नर्मदांचल एक सामुदायिक संगठन है। इस कम्पनी के माध्यम से इजेक्टा ब्राण्ड के नाम से जैव कीटनाशकों की बिक्री की जाती है।

लगभग 25 प्रतिशत किसानों ने रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एकदम बन्द कर दिया है और 50 प्रतिशत ने अपने खेतों में कीटनाशकों का प्रयोग आधा कर दिया है इससे लोगों की उत्पादन लागत काफी घट गयी है।

लाभ

लगभग 500 किसानों द्वारा विभिन्न फसलों जैसे – धान, गेंहूं, सोयाबीन आदि में जैव कीटनाशकों का उपयोग किया जा रहा है। वे जैव कीटनाशकों के उपयोग से बहुत लाभ का अनुभव कर रहे हैं। फसलों में 20 से 25 प्रतिशत की वृद्धि किसानों द्वारा दर्ज की गयी। प्रति हेक्टेयर उपज भी बढ़ी। साथ ही पत्तियों में पीलापन व फंफूद सम्बन्धी बीमारियों का कोई प्रकोप नहीं था, पौधे स्वस्थ तथा बालियों की लम्बाई बढ़ गयी थी, जिससे उत्पाद का वजन बढ़ गया था। उनके बीज बहुत ही मोटे–मोटे अच्छे रंग व देखने में बहुत सुन्दर लग रहे थे।

किसानों ने रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कम कर दिया है। लगभग 25 प्रतिशत किसानों ने रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एकदम बन्द कर दिया है, 50 प्रतिशत ने अपने खेतों में कीटनाशकों का प्रयोग आधा कर दिया है और 25 प्रतिशत किसान फसल वृद्धि के दौरान सिर्फ एक बार रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग कर रहे हैं। इससे लोगों की उत्पादन लागत काफी घट गयी है। रसायनिक कीटनाशकों के प्रयोग में लगभग 1800 रू0 प्रति एकड़ लागत आ रही है, जबकि जैव कीटनाशक के उत्पादन से रू0 1000 की लागत आ रही है, जिससे लगभग 800 रू0 प्रति एकड़ की बचत हो रही है। उत्पादन लागत घटने तथा उपज बढ़ने के साथ ही रू0 5000.00 प्रति एकड़ की दर से किसान अपनी शुद्ध आमदनी भी बढ़ा रहे हैं।

जैव कीटनाशकों के निरन्तर प्रयोग के बाद किसानों ने यह देखा कि लेडी बर्ड बीटल एवं केंचुओं की संख्या में वृद्धि हुई है, जिससे पारिस्थितिकी विविधता बढ़ी है। इसके प्रयोग से पानी की भी भारी बचत हुई है। पहले रसायनिक कीटनाशकों के उपयोग के साथ पानी की खपत भी काफी होती थी।

पहल का विस्तार

वर्तमान में लगभग 500 किसान गौमूत्र से बने जैव कीटनाशकों का प्रयोग अपने खेतों में विभिन्न फसलों जैसे धान, गेंहूं, सोयाबीन आदि में कर रहे हैं। ये सकारात्मक परिणाम व्रुती को इस पहल को विस्तार देने हेतु प्रोत्साहित कर रहे हैं और वह इसे एक उद्योग के तौर पर स्थापित करने हेतु नाबार्ड का सहयोग लेने का प्रयास भी कर रहा है।

पर्यावरण प्रचार सहायता कार्यक्रम के तहत् नाबार्ड के सहयोग से व्रुती ने मध्य प्रदेश में सिहोर जिले के बुधनी विकासखण्ड के यरदानगर और कन्नडवार गांवों के आदिवासी क्षेत्रों में दो जैव कीटनाशक इकाइयां स्थापित की हैं जो किसान समूहों / संघों तथा व्रुती के संयुक्त प्रयास से संचालित हैं। सामाजिक उद्यम माडल बहुत कम निवेश के साथ न केवल किसानों को बेहतर आय प्राप्त करने में मदद कर रहे हैं, वरन् मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि तथा पर्यावरण की सुरक्षा भी कर रहे हैं।

■

प्रमेल गुप्ता
व्रुती, लाइवलीहुड रिसोर्स सेण्टर
सरकारी हाई स्कूल के पीछे, 41, प्रथम मेन रोड, अश्वथ नगर
आर०एम०वी० दूसरा स्टेज, बंगलौर, कर्नाटका– 560094, भारत
ई–मेल : pramel@vrutti.org.info@vrutti.org

Family farmers breaking out of poverty
LEISA INDIA, Vol. 16, No.2, June 2014

कृषि पारिस्थितिकी परिदृश्य

तटीय सुन्दरवन में स्वदेशी चावलों का संरक्षण

दीपायन डे

ढांचागत एवं तकनीकी ऐसी बहुत सी समस्याएं हैं, जिनके कारण लघु किसान चावल की संकर एवं उच्च उत्पादक प्रजातियों की खेती के लिए रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं। इससे वैश्विक स्तर पर मान्यता दिलाने तथा स्थानीय प्रजातियों को अधिक स्थाईत्व पूर्ण तरीके से प्रचारित करने की उनकी अपनी क्षमता में भी बाधा पहुंच रही है। विशेषकर, ज्ञान तथा तकनीकी लागत तक पहुंच बनाने में समस्याएं आ रही हैं, जिससे उन्हें जैविक उत्पादन अभ्यासों को अपनाने तथा व्यवस्थित रखने में कठिनाई आ रही है। स्थानीय संसाधनों एवं कम लागत पर आधारित एक स्थानीय मॉडल विकसित करना तथा किसानों की पर्याप्त सहभागिता के साथ स्थानीय सूचना मंचों के माध्यम से उसे प्रसारित करना एक अधिक व्यवहारिक विकल्प प्रस्तुत कर सकता है।

आमतौर पर वैश्विक सन्दर्भ में प्रमाणित जैविक खेती को अपनाया जाना वर्तमान में विकासशील दक्षिणी क्षेत्रों में लघु स्तर के किसानों के सामने चुनौतियां प्रस्तुत कर रहा है। सघन कृषि माडलों से उत्पन्न समस्याओं जैसे मृदा के जैविक एवं पोषक तत्वों का ह्रास, भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन कीटनाशक अनुकूल, कीटनाशक की बढ़ती विषाक्तता आदि से निपटने हेतु जैविक खेती एक प्रस्ताव प्रस्तुत करता है। फिर भी, इनमें से अधिकांश चुनौतियां सघन रसायन खेती प्रणाली को उन्नत बनाने का ही कार्य कर रही है। जैसे – अपर्याप्त प्रसार क्षमता, तकनीकी प्रशिक्षण सामग्रियों का अभाव एवं महंगे निवेशों को क्रय करने हेतु पूंजी की कमी आदि। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बहुत से विकासशील देशों में जैविक खेती के विस्तार की प्रक्रिया बहुत ही धीमी है। उदाहरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जैविक कृषि अभियान संघ ने यह अनुमान लगाया कि भारत में, लगभग 150790 हेक्टेयर के परिक्षेत्र में जैविक खेती की जाती है, जो कि कुल खेती योग्य भूमि का केवल लगभग 0.1 प्रतिशत है। इसके अलावा, आधे से अधिक भारत के जैविक उत्पाद आयात करने वाली फसलों जैसे चाय, काफी एवं मसालों आदि के होते हैं। जैविक चावल में विपणन की क्षमता है, लेकिन इसे एक रणनीतिक तरीके से बढ़ावा देने की आवश्यकता होगी।

भारत एवं अन्य विकासशील देशों में जैविक खेती अपनाने में आ रही चुनौतियों को देखने के सन्दर्भ में पश्चिम बंगाल, भारत में एक केस अध्ययन से समझ बनाई गयी, जहां रसायनिक खेती के स्थाई विकल्प के रूप में पारम्परिक जैविक खेती के माध्यम से सुन्दरवन के तटीय क्षेत्रों में पारम्परिक अनुकूलित प्रजातियों के संरक्षण हेतु प्रयास किया जा रहा है।

दक्षिणी पश्चिमी बंगाल के उत्तरी 24 परगना जिले में गोसाबा विकास खण्ड के सातजेलिया गांव में वर्ष 2010–12 में प्रक्षेत्र कार्य किया गया था। पुनः सामाजिक प्रभाव आकलन करने के लिए किसान समूहों के मुखियाओं से व्यक्तिगत साक्षात्कार किया गया। इसके लिए स्थाई कृषि तकनीक में नाबार्ड से सहयोग मिला। इसके साथ ही कृषि प्रसार विशेषकर आत्मा कार्यक्रम से जुड़े स्थानीय, राज्य एवं केन्द्र स्तर के सरकारी अधिकारियों के साथ बैठकें, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में शोध तथा ग्रामीण विकास में जुड़े अन्य सामाजिक संगठनों के कार्यकर्त्ताओं के साथ बैठकें भी आयोजित की गयीं। केन्द्रित समूह चर्चाओं तथा सहभागी नाजुकता आकलन के माध्यम से किसान विद्यालयों की तरह की प्रसार बैठकें आयोजित की गयीं।

पहल

दक्षिणी पश्चिमी बंगाल के उत्तरी 24 परगना जिले में गोसाबा विकास खण्ड के सातजेलिया गांव में जनसंख्या का घनत्व 3034 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 है। लगभग 75 प्रतिशत परिवारों के पास उनकी खुद की जमीन एक हेक्टेयर से कम है। 60 प्रतिशत से उपर भूमि कम सिंचित है और यहां पर साल में सिर्फ एक फसल ही ली जा सकती है। वर्ष 2011 एवं 2012 में एक कार्यक्रम के माध्यम से सूखा मौसम के लिए चावल की एक प्रजाति की खोज की गयी। जिसके तहत् किसानों को उच्च उपज वाली प्रजातियों के बीज के किट के साथ ही जैविक एवं रसायनिक उर्वरक एवं रसायनिक कीटनाशक वितरित किया गया। जैविक खेती के अन्तर्गत बीज ग्राम कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए देशी प्रजातियों की खेती प्रारम्भ की गयी। स्थानीय स्तर पर उगने वाली तथा लवणीय मृदा के प्रति

विशेषज्ञता, जानकारी प्रधान तकनीक एवं महंगी लागतों पर अत्यधिक निर्भरता वाले वैश्विक जैविक मॉडल वास्तव में विकासशील देशों के लिए एक वास्तविक विकल्प नहीं प्रस्तुत करते हैं।

कुछ हद तक अनुकूल चावल की सात परम्परागत प्रजातियों की खेती जैविक खाद – वर्मी कम्पोस्ट एवं जैव उर्वरक (नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं घुलनशील फासफेट सूक्ष्म जीवाणु) के साथ की गयी। चिनसुराह राज्य चावल शोध संस्थान, पश्चिम बंगाल से आधारीय बीजों का एकत्रीकरण किया गया तथा बायोमास व प्रति एकड़ / किग्रा0 उपज की विकास क्षमता मानकों को नियन्त्रित अभ्यास के सापेक्ष दर्ज करते हुए दो संकर प्रजातियों के बीच तुलनात्मक अध्ययन किया।

परिणाम

तालिका 1 से यह प्रदर्शित होता है कि स्थानीय प्रजातियां संकर प्रजातियों की अपेक्षा कम पानी चाहने वाली होती हैं और यह संकर प्रजातियों की तुलना में आंशिक रूप से क्षारीय मृदा में उगने वाली स्थायी विकल्प हैं। स्थानीय देशी प्रजातियों जैसे– जमीनादू एवं गोबिन्दोभोग संकर प्रजातियों के समान ही उपज देती हैं।

यद्यपि कि संकर प्रजातियां चावल उत्पादन में उपज का एक रिकार्ड बनाती हैं और उनमें 5–8 वर्षों तक निरन्तरता बनी रहती है। तथापि किसानों पर किये गये अध्ययन में यह दर्ज किया गया कि हाल के वर्षों में उपज में 35–70 प्रतिशत की गिरावट आयी है। व्यवसायिक उर्वरकों जैसे यूरिया फास्फेट आदि पर किसानों की अत्यधिक निर्भरता के कारण जिंक और लौह सूक्ष्म तत्वों की कमी सामान्य रूप से पायी जा रही है। इसके अतिरिक्त, विशेषकर सब्ज़ियों की खेती में कीट नियन्त्रण के लिए भी किसान कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ाते जा रहे हैं। संकर प्रजाति के चावल में उत्पादन निवेश की निरन्तर बढ़ती लागतों तथा कीटों के नियन्त्रण में बढ़ रही कठिनाईयों के कारण कुछ किसान धान की खेती का क्षेत्रफल कम कर उच्च मूल्य वाली नगदी फसल जैसे बैगन की खेती का क्षेत्रफल बढ़ा रहे हैं।

कुछ चुनिन्दा स्थानीय प्रजातियों एवं संकर प्रजातियों की जैविक एवं रसायनिक उर्वरकों से अलग–अलग प्राप्त उपज के तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रदर्शित हुआ कि स्थानीय प्रजातियों की जैविक विधि से खेती करने पर रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से संकर प्रजातियों से प्राप्त उत्पादन के समान ही उपज प्राप्त होती है। सुन्दरवन में जहां यह हस्तक्षेप किया जा रहा है, वहां पर एक एकड़ में उत्पादन लागत जानने के लिए किये गये लागत–लाभ विश्लेषण से पता चला कि जैविक विधि से की जाने वाली देशी प्रजातियों की खेती की अपेक्षा रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हुए संकर प्रजातियों की खेती में 68 प्रतिशत अधिक खर्च आता है। फिर भी अनाजों की कुटाई एवं पालिश का खर्च अधिक होने तथा प्रति कुन्तल प्रसंस्कृत चावल का बाजार मूल्य कम होने के कारण यह संकर प्रजातियों के समान लाभ नहीं दे पाता। केवल जैविक सुगन्धित चावल ही ऐसी है, जिससे अधिक लाभ मिलता है। सुगन्धित

तालिका 1 : सुन्दरवन में देशी एवं संकर प्रजातियों के चावल– उपज एवं वृद्धि की तुलना (हाईब्रिड)

प्रजाति का नाम	परिपक्वता अवधि (दिनों में)	उपज (किग्रा./एकड़)	औसत डी.जी.आर. (% में)	कल्लो की संख्या
जमैन्दु	107	2000	24.7	15
नोनाबोकरा	115	425	6.6	10
हेमिल्टन	107	1670	22.8	12
मटिया	110	1838	37.2	18
तालसारी	115	675	14.2	8
गोविन्दो भोग	100	2400	25.5	22
तोतू	110	1189	18.8	18
हाईब्रिड 1	95	146	5.8	10
हाइब्रिड 2	100	2350	18.4	15

चावल रू0 23 से 30 प्रति किग्रा0 तक बिकता है, जबकि सामान्य संकर अनाज का मूल्य रू0 10 से 15 प्रति किग्रा0 ही मिलता है। सक्रिय तत्वों एवं उनके कार्य स्वरूपों के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु कीटनाशक ट्रेडमिल की शुरूआत की गई। पर्याप्त सरकारी प्रसार क्षमता के अभाव में, कीट प्रबन्धन के बारे में स्थानीय खुदरा कीटनाशक विक्रेता सलाह देने के सबसे आम स्रोत हैं। दुकानदारों के साथ किये गये साक्षात्कारों में निकल कर आई कि वे विभिन्न सक्रिय तत्वों पर आधारित कीटनाशकों के चक्रीकरण के महत्व पर समझ बनाने का सुझाव देते हैं। इसके अलावा, अधिक चुनिन्दा और क्रियाओं के विभिन्न तरीके रखने वाली कीटनाशकों की नई पीढ़ी या तो अनुपलब्ध हैं।

दशकों से प्रयुक्त किये जा रहे उत्पादों के बारे में उचित जानकारियों के साथ किसानों को शिक्षित करने में सार्वजनिक प्रसार एवं निजी क्षेत्रों की असमर्थता को देखते हुए किसानों को अधिक से अधिक जैविक खेती की ओर परिवर्तित करने के लिए जानकारियां दी जाने की कोशिश की जा रही है। उदाहरण के लिए, दो दशकों से भी अधिक समय से विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों पर निर्भरता होने के कारण किसान कीटों की पहचान एवं विशेषकर हिंसक कीटों के मौलिक व कमजोर परिस्थिति विज्ञान को समझ रहे हैं। एकीकृत कीट प्रबन्धन के विस्तार में लगी स्वैच्छिक संगठनों के पास भी किसानों में वितरण के लिए कीट एवं शिकारी कीटों की पहचान हेतु अच्छी गुणवत्ता वाली दिशा–निर्देशिका नहीं है। किसान स्कूल की तरह के प्रशिक्षणों के माध्यम से एकीकृत कीट प्रबन्धन के प्रोत्साहन में लगे सरकारी कृषि अधिकारी भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके पास स्थानीय भाषा में उचित शिक्षण सामग्रियों का अभाव है। इसके अतिरिक्त सरकारी अधिकारी एवं स्वैच्छिक संगठन दोनों को स्वयं ही जैविक तरीकों एवं जैव पारिस्थितिकी खेती के लिए स्थानीय प्रासंगिक जानकारियां कठिनता से प्राप्त होती हैं। लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं की आपूर्ति श्रृंखला, मात्रा एवं जैव उर्वरकों के प्रयोग के मानक की जानकारियों का अभाव तथा जैव कीटनाशकों की तुरन्त

उपलब्धता जैविक खेती अभ्यास के सामने मुख्य चुनौतियां हैं।

इसके साथ ही, वे नये नये उत्पन्न होने वाले कृत्रिम रसायनिक कीटनाशकों तक अपनी पहुंच बनाने में अभी अक्षम हैं। विकसित देशों में सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले हाई–टेक जैविक खेती निवेशों की जानकारी होने के बावजूद उन तक स्थानीय किसानों की पहुंच बहुत कम है। उदाहरण के लिए, कलकत्ता में स्थित सरकार द्वारा संचालित एकीकृत कीट प्रबन्धन केन्द्र द्वारा किसान स्कूल प्रशिक्षण सत्र आयोजित कर किसान प्रशिक्षणार्थियों को कीट जनसंख्या की निगरानी के लिए फेरोमेन ट्रैप्स के प्रयोग एवं उनके कार्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्रदान की गयी। हालांकि ये ''प्राकृतिक'' कीटनाशक कृत्रिम कीटनाशकों की अपेक्षा अधिक कारगर होते हैं। विकसित देशों में जैविक किसानों द्वारा सामान्य रूप से प्रयुक्त की जाने वाली एक प्राकृतिक कीटनाशक ''बैकिलुस थुरिंगिनिसिस ''(बीटी)'' के एक लीटर की कीमत रू0 1000.00 है। इसके अतिरिक्त, जैव कीटनाशकों जैसे ''बीटी'' का जीवन चक्र बहुत ही कम होता है और ये विशेषकर उच्च तापमान में तेजी से नष्ट हो जाते हैं। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में समस्या उत्पन्न होती है। साथ ही, भारत के जैव कीटनाशक एवं जैव उर्वरक उद्योगों में गुणवत्ता का अभाव होता है, जिसके परिणामस्वरूप अप्रभावी उत्पाद प्राप्त हो रहे हैं। अन्त में, पश्चिम बंगाल में मान्यता प्राप्त जैविक निरीक्षण एवं प्रमाणन एजेन्सियों द्वारा निर्धारित की गयी फीस भी किसानों के लिए बहुत अधिक है। वर्तमान सरकारी नीति के अन्तर्गत जैविक खेती के परीक्षण के लिए एक खेत कम से कम तीन वर्षों के लिए लिया जाता है। छोटी जोत के समूहों के लिए निरीक्षण एवं प्रमाणन की लागत यात्रा व्यय एवं अन्य शुल्कों को छोड़कर लगभग रू0 5000.00 है। इन शुल्कों के साथ 25 से 50 के समूहों को संगठित करने के लिए प्रारम्भिक लेन–देन की लागत भी लगती है, इस कारण छोटे व मझोले किसानों के लिए एक बड़ा बोझ होता है और इसी कारण जैविक खेती उनके लिए एक व्यवहार्य विकल्प के रूप में नहीं है।

कृषि–पारिस्थितिकी अभ्यासों की ओर अग्रसर

कुछ स्थानीय किसान जो वाणिज्यिक फसलों की जैविक खेती सफलतापूर्वक कर रहे हैं वे नवोन्वेष किसान हैं, जो किसी भी उपरी निवेश का प्रयोग नहीं करते। वे अपनी छोटी जोत का बेहतर उपयोग करते हैं, गोबर एवं गौमूत्र का प्रयोग करते हैं और घर पर बने उर्वरकों एवं कीटनाशकों जैसे – नीम की पत्ती को सड़ाकर उसकी खाद का प्रयोग हमेशा करते हैं। स्थानीय स्वैच्छिक संगठन इन नव पहलों के उदाहरणों को स्थापित करते हुए अधिक सफलता पा रहे हैं और चरणवार प्रक्रिया को अपनाने पर जोर दे रहे हैं अर्थात् पूर्णतया रसायन मुक्त उत्पादन को प्रोत्साहित करने से पहले सर्वप्रथम कीटनाशकों के उपयोग को खत्म करने और प्राकृतिक संसाधनों जैसे – गौमूत्र, फसल अवशेषों एवं पेड़ों की पत्तियों के उपयोग से मृदा स्वास्थ्य उन्नत बनाने पर जोर देते हैं। पूर्ववर्ती खेती पद्धति की बहुत सी पारम्परिक प्रजातियों एवं देशी जानकारियों के नुकसान के बाद भी, स्वैच्छिक संगठन स्थानीय स्तर पर विकसित और परीक्षित तकनीकों के साथ बनाई गयी जैविक खेती की ओर क्रमशः बढ़ने के प्रति आशावान हैं। ये माध्यम पहले से निवेश लागतों तथा कीटनाशकों के प्रयोग को घटाने में उपयोगी सिद्ध हो चुके हैं जिससे विशेष रूप से निवेश सघन शुष्क मौसम के चावल की फसल में पैदावार में गिरावट आने के बाद भी लाभप्रदता एवं सुरक्षा बढ़ रही है। ये परिणाम अन्य शोध निष्कर्षों के साथ मेल खा रहे हैं, जो यह प्रदर्शित करते हैं कि जैविक की ओर बदलाव के कृषि पारिस्थितिकी तरीके उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं और विकासशील देशों में आजीविका को उन्नत बना सकते हैं।

इस पक्ष में, स्थानीय धान की प्रजातियों के संरक्षण के लिए जैविक कृषि का यह विकल्प स्थानीय जलवायु नाजुकता अनुकूलित होने के कारण इस विशेष परिवर्तनशील पारिस्थतिकी परिस्थिति में खाद्य सुरक्षा के विकास हेतु एक उल्लेखनीय प्रभाव डालता है। यद्यपि कि इसका विपणन विस्तार एवं अन्य लोगों तक इसकी पहुंच नहीं है, फिर भी सुन्दरवन तटीय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से अनुकूलन एवं उसके न्यूनीकरण का यह एक सबसे कम मूल्य का विकल्प कहा जा सकता है।

विस्तार की कमी को दूर करने के लिए स्वैच्छिक संगठन किसानों को समूह के रूप में संगठित करने, पूरे फसली मौसम भर उनके साथ बैठकें करने, उन्हें एक–दूसरे से सीखने हेतु उत्साहित करने एवं दूसरे किसानों को प्रशिक्षित करने में भी उनकी मदद करते हैं। उनके दृष्टिकोण लगभग किसान स्कूल मॉडल पर आधारित हैं, जो व्यापक रूप से जटिल फसल प्रबन्धन माध्यमों जैसे एकीकृत कीट प्रबन्धन को प्रारम्भ करने के लिए एक अधिक सफल पद्धति मानी जाती है। इस माध्यम का अनुसरण करके स्वैच्छिक संगठन बहुत से स्थानीय किसानों को साधारणतया बीज चयन तकनीक को अपनाने, मृदा में सूक्ष्म जीवाणु बढ़ाने, बीमारियों को समस्या को कम करने के लिए पौध के बीच की दूरी को सुधारने व कीट नियन्त्रण के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक सामग्रियों का अधिकाधिक उपयोग करने में मदद कर रहे हैं।

केवल उच्च लागत वाली रसायन सघन कृषि के साथ किसानों की समस्याओं के मूल कारण को समझने के द्वारा ही, हम विकासशील देशों में जैविक पद्धतियों को बढ़ावा देने के दौरान आ रही इसी प्रकार की समस्याओं से बचने हेतु सक्षम होगें। जैविक खेती एक परिपूर्ण माडल नहीं है, जिसे विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में ठीक इसी प्रकार स्थानान्तरित किया जा सके और न ही पहले से मौजूद देशी जानकारियों पर आधारित पुरानी कृषिगत पद्धतियों की ओर लौट कर ही सफलता हासिल की जा सकती है। विशेषकर एशिया में विकासशील देशों के बहुत से क्षेत्रों में हरित क्रान्ति ने इसलिए तेजी से कृषिगत परिदृश्य को बदल दिया है कि जैविक खेती के साथ

आगे बढ़ने के लिए स्थानीय किसानों के साथ नयी जानकारियों के आधार पर कार्य करते हुए मुख्य कृषि पारिस्थितिकी सिद्धान्तों एवं पारम्परिक ज्ञान एवं नवीन तकनीकों को एक साथ सम्मिलित करते हुए अनुकूलन एवं नवोन्वेष की एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया ही केवल एक रास्ता है।

सन्दर्भ

कुमार, शिव, सुभाष चन्द्र, डी.आर. सिंह एवं के.आर. चौधरी (2013), भारत में संविदा अनुबन्ध एवं लागू करना : जैविक बासमती धान की खेती का एक केस, इण्डियन जर्नल आफ एग्रीकल्चरल इकोनामिक्स 68 (3) : 4 प्रेटी, जे.एन. मोरिसन, जे.आई.एल. एवं हाइन, आर.ई. (2003) : विकासशील देशों में कृषिगत स्थाईत्व वृद्धि के द्वारा खाद्य गरीबी कम करना, कृषि, पारिस्थितिकी प्रणाली एवं पर्यावरण, 95 (1) : 217–234

■

दीपायन डे
मुख्य, साउथ एशियन फोरम फार एनवायरन्मेण्ट
पी–32, पंचशायर
जादवपुर हाउसिंग कोआपरेटिव सोसायटी
निकट पीयरलेस अस्पताल, कोलकाता–700094
ई–मेल : deydr@yahoo.co.in

Family farmers and sustainable landscapes
LEISA INDIA, Vol. 16, No.3, September 2014

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 1999-2014

V.1, No. 1, 1999 - Markets for LEISA and Organic products
V.1, No. 2, 1999 - Stakeholders in Research
V.1, No. 3, 1999 - Restoring biodiversity

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

विश्व के चावल संकट को दूर कर सकती है भारतीय वैज्ञानिक की योजना

भारत डोगरा

विश्व के मौजूदा खाद्य संकट के दौरान चावल की कमी की ओर विशेष ध्यान आकर्षित हुआ है क्योंकि यह विश्व के सबसे अधिक लोगों का सबसे महत्वपूर्ण खाद्य है व विशेषकर एशिया के अनेक देशों की खाद्य व्यवस्था तो जैसे चावल पर ही आधारित है। चावल के संकट से जूझती दुनिया को समाधान पाने में भारत के चावल के शीर्ष के वैज्ञानिक स्वर्गीय डा. आर.एच. रिछारिया के विचारों व कार्य से आज भी बहुत मदद मिल सकती है, विशेषकर उनकी उस कार्ययोजना से, जो उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय के विशेष अनुरोध पर तैयार की थी।

डा0 आर.एच. रिछारिया

11 मई 1996 को डा. आर.एच. रिछारिया के निधन से भारतीय कृषि विज्ञान ने अपनी एक महान प्रतिभा को खो दिया। उपलब्धियों और ऊंचे पदों से भरे जीवन में यदि डा. रिछारिया निरंतर संघर्षशील रहे तो इस कारण कि उन्होंने सदा किसानों के हितों को सबसे ऊंचा रखा। किसानों और विशेषकर छोटे किसानों के हितों को कभी न छोड़ने के उनके संकल्प ने कई बार इस बेहद मासूम चेहरे और नम्र व्यवहार के व्यक्ति को अति शक्तिशाली कंपनियों और साम्राज्यवादी हितों के विरूद्ध अकेला ही खड़ा कर दिया। अतः वे शीर्ष के पदों पर पंहुचते रहे तो उन्हें छोड़ते भी रहे। बेहद अकेलेपन में सब साधनों से वंचित किए जाने पर भी स्वभाव से कोमल पर सकंल्प के पक्के इस वैज्ञानिक ने जिस तरह अपना कार्य जारी रखा, वह हमेशा के लिए एक शानदार मिसाल है।

वर्ष 1959 में चावल के देश के सबसे महत्त्वपूर्ण अनुसंधान केन्द्र केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, कटक में वे निदेशक के पद पर कार्य करने पंहुचे। कटक स्थित इस केन्द्र में चावल अनुसंधान ने अच्छी प्रगति की और चावल उत्पादकता बढ़ाने की कई नई संभावनाएं सामने आने लगीं। पर इसी बीच अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण भारत में चावल की ऐसी किस्में लाई जाने लगी जिनसे चावल की फसल में बीमारियों और कीड़ों के प्रकोप के बढ़ने का खतरा था। डा. रिछारिया ने पूरे जी जान से इन नई विदेशीय किस्मों को पर्याप्त जांच के बिना भारत में लाने और फैलाने का विरोध किया। इस विरोध के कारण कटक संस्थान से तो उन्हें हटना ही पड़ा साथ ही उन उच्च पदों से भी वंचित होना पड़ा जो उनकी वरिष्ठता के कारण उन्हें प्राप्त होने की पूरी संभावना थी।

कुछ ऐसा ही अनुभव डा. रिछारिया को मध्य प्रदेश सरकार से भी हुआ जिसने उन्हें मध्य प्रदेश स्थित चावल अनुसंधान संस्थान की अध्यक्षता करने को कहा। डा. रिछारिया ने यहां एक बहुत मेहनती और कार्यकुशल टीम तैयार की व किसानों की भागेदारी से चावल की 17000 देशीय किस्मों व उप–किस्मों को एकत्र किया गया जिसमें अधिक उत्पादकता देने वाली, सुगन्धित व अन्य तरह से स्वादिष्ट अनेक बहुमूल्य किस्में पाई गईं। आदिवासी किसानों व महिला किसानों को उन्होंने देशीय किस्में एकत्र करने में व इस पर आधारित बेहतर खेती के प्रयासों में विशेष स्थान दिया। यह कार्य बहुत बढ़िया चल रहा था पर एक बार फिर विदेशी दबाव में इन किस्मों को बाहर ले जाने और बड़ी कंपनियों के हितों में इनके दोहन के प्रयासों ने डा. रिछारिया को विवश कर दिया कि वे विरोध और संघर्ष के रास्ते पर आ जाएं। एक बार फिर उन्हें अपने अमूल्य कार्य को छोड़ कर अज्ञातवास में जाना पड़ा।

ध्यान देने की बात है कि चावल की फसल में बीमारियों और कीड़ों के प्रकोप की उनकी चेतावनी शीघ्र ही सही साबित हुई और वर्ष 1979 में सरकारी तौर पर 'टास्क फोर्स आन राईस ब्रीडिंग' का गठन किया गया जिसकी अध्यक्षता के लिए डा. रिछारिया को ही बुलाया गया, उन्हीं डा. रिछारिया को जिनकी चेतावनियों को पहले नजरअंदाज किया गया था। 1960–70 के दशक के मध्य में विदेशी सहायता संस्थाओं और अनुसंधान

केन्द्रों के दबाव में भारतीय सरकार ने चावल की बौनी, रासायनिक खाद का अधिक उपभोग करने वाली किस्मों के प्रसार का निर्णय लिया। इन्हें चावल की अधिक उत्पादकता की किस्में या अ.उ.कि. कहा गया। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इतनी ही या इससे अधिक उत्पादकता देने वाली देशी किस्मों को सरकारी अ.उ.कि. सूची में सम्मिलित नहीं किया गया व विदेशी किस्मों को अधिक उत्पादकता का एकमात्र स्रोत मान लिया गसा। इन्हें देश के अनेक भागों में 'सरकारी धान' भी कहा जाता है व कई बार इन्हें 'हरित क्रान्ति की किस्में' कहा जाता है।

अपेक्षाकृत बहुत कम रासायनिक खाद व अन्य खर्च के बावजूद चावल उत्पादकता में वृद्धि की दर हरित क्रान्ति से पहले (अथवा विदेशीय किस्मों के प्रसार से पहले) के समय में अधिक थी। विदेशीय अ.उ.कि. की इस विफलता के क्या कारण हैं?चावल प्रजनन के ख्याति प्राप्त विशेषज्ञों की टास्क फोर्स की बैठक फरवरी 1979 में केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान कटक में डा. रिछारिया के अध्यक्षता में हुई व उसकी रिपोर्ट में इस विफलता के कुछ कारण बताए गए हैं – विदेशी अ.उ.कि. का संकीर्ण आनुवंशिक आधार, भारत के अधिकतर चावल उत्पादन क्षेत्र के लिए उनका अनुकूल न होना व बीमारियों व कीड़ों आदि के प्रति उनकी अधिक संवेदनशीलता (नीचे दिए इस रिपोर्ट के उद्धरण में अ.उ.कि. से तात्पर्य विदेशीय अ.उ.कि. से ही है)।

इस टास्क फोर्स के शब्दों में, "अधिकतर अ.उ.कि. टी.एन. (1) या आई.आर. (8) से व्युत्पादित है व इस कारण उनमें बौना करने का डी.जी.ओ.वू.–जेन का जीन है। इस संकीर्ण आनुवंशिक आधार से भयप्रद एकरूपता उत्पन्न हो गई है, इसी कारण विनाशक जंतुओं (कीट आदि) व बीमारियों के प्रति संवेदनशीलता भी। प्रसारित की गई अधिकतर किस्में प्ररुपी ऊंची भूमि व नीची भूमि, जो देश के कुल चावल क्षेत्र का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा है, के लिए अनुकूल नही है। इन स्थितियों में सफलता के लिए हमें अपने अनुसंधान काग्रक्रमों व रणनीतियों को पुनः अनुस्थापित करने की आवश्यकता है।" एक अन्य स्थान पर इसी टास्क फोर्स ने कहा है, "भारत में जारी की गई विभिन्न चावल की किस्मों की वंशावली को सरसरी निगाह से देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि जनन–द्रव्य का आधार बहुत संकीर्ण है।"

नई किस्मों की विनाशक जंतुओं के प्रति बढ़ती संवेदनशीलता के विषय में टास्क फोर्स ने कहा है, "अ.उ.कि. के आगमन से गालमिज, भूरे फुदके, पत्ती मोड़ने वाले कीड़े, वोर्ल मागट जैसे विनाशक कीट जंतुओं की स्थिति में उल्लेखनीय बदलाव आया है। चूंकि अब तक जारी की गई अधिकतर अ.उ.कि. मुख्य विनाशक जंतुओं के प्रति संवेदनशील हैं व 31 से 100 प्रतिशत तक फसल की हानि होने की संभावना रहती है, उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पूर्व–स्थापित प्रतिरोध वाली किस्मों का विकास अति आवश्यक हो गया है।

टास्क फोर्स के इन उद्धरणों में हम इतना ही जोड़ना चाहेंगे कि अ.उ.कि. की ये समस्यायें अभी तक बनी हुई हैं। इसके साथ यह भी जोड़ देना उचित है कि कम साधनों के छोटे किसानों के लिए ये किस्में विशेष रूप से समस्याप्रद हैं।

जब चावल के संदर्भ में सरकार द्वारा बहुप्रचारित हरित क्रान्ति की विफलता जारी रही और रसायनिक खाद व कीटनाशकों पर अत्यधिक निर्भरता हानिकारक सिद्ध होने लगी तो देश की इस सबसे महत्वपूर्ण फसल के बारे में चिन्तित सरकार को वर्षों से उपेक्षित महान कृषि वैज्ञानिक डा. आर.एच. रिछारिया की फिर याद आई। तब वर्ष 1983 में श्रीमती इंदिरा गांधी के कार्यकाल में प्रधानमंत्री कार्यालय ने उन्हें चावल का उत्पादन बढ़ाने के लिए एक कार्य योजना बनाने का आग्रह किया। डा. रिछारिया ने ऐसी कार्य योजना तैयार की, पर श्रीमती इंदिरा गांधी की मृत्यु के बाद यह दस्तावेज उपेक्षित ही रह गया। आज भी प्रधानमंत्री के आग्रह पर विश्व के एक अति विख्यात विशेषज्ञ द्वारा तैयार यह दस्तावेज किसी सरकारी कार्यालय की फाईलों में दबा पड़ा होगा। इस दस्तावेज की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही बनी हुई है। यही नहीं, बल्कि इसकी जानकारी अधिक लोगों तक पंहुचाना बहुत महत्वपूर्ण है।

इस दस्तावेज में वे पहले उन कारणों की पहचान कराते हैं जिनकी वजह से पिछले लगभग बीस वर्षों में खाद, कीटनाशकों, सिंचाई, अनुसंधान, प्रसार आदि पर बहुत खर्चा करने के बावजूद उत्पादकता वृद्धि की दर में वांछित तेजी नहीं लाई जा सकी है। उसके बाद वे अपनी योजना रखते हैं, जिनके तीन मुख्य भाग हैं – (1) चावल का विकास समृद्ध देशी जनन द्रव्य पर आधारित होगा, जिसका और अन्वेषण व संरक्षण होना चाहिए, (2) एक अति विकेन्द्रित प्रसार नीति व (3) कृन्तक प्रसार विधि का सुधरी किस्मों के प्रसार के लिए व्यापक स्तर पर उपयोग।

डा. रिछारिया के शब्दों में, "मुख्य समस्या अनचाही नई चावल किस्मों को जल्दबाजी में जारी करना है। हमने देशी ऊँची उत्पादकता की किस्मों को नकार कर बौनी (विदेशी) अधिक उत्पादकता की किस्मों (अ.उ.कि.) पर अपनी रणनीति निर्धारित की। हम सूखे की स्थिति को भी भूल गए, जब इन विदेशी अधिक उत्पादकता की किस्मों (अ.उ.कि.) में उत्पादकता गिरती है। अधिक सिंचाई व पानी में उगाई जाने पर ये किस्में बीमारियों व नाशक जन्तुओं के प्रति संवेदनशील रहती हैं जिनका नियंत्रण आसान नहीं है व इस कारण भी उत्पादकता घटती है। गन्ने और गेहूँ की फसल से चावल का एक मुख्य भेद यह है कि व्यापक अनुकूलशीलता बहुत कम चावल के क्षेत्र पर लगभग 10 प्रतिशत ही लागू होती है लगभग 10 प्रतिशत ही। इस कारण भिन्न–भिन्न चावल की किस्मों की स्थानीय पसन्द होती हैं।" निष्कर्ष में डा. रिछारिया कहते हैं कि जब नींव ही कमजोर है (विदेशी जनन द्रव्य) तो इस पर बना भवन ढह जाएगा।

योजना में एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा है, "(चावल में विफलता) का सबसे महत्वपूर्ण व नजदीकी कारण किसी क्षेत्र में पूरी तरह या आंशिक तौर पर चावल की किस्मों का बार–बार

(या जल्दी–जल्दी) बदलाव करना है। यह इस कारण है क्योंकि पर्यावरण में पहले के जनन द्रव्य के सन्दर्भ में जो कृषि परिस्थितकीय संतुलन शताब्दियों तक अनुभवजन्य प्रजनन की व चयन की प्राकृतिक प्रक्रिया में बन गया था, वह अस्त–व्यस्त हो गया है।'

सौभाग्यवश देशी अधिक उत्पादकता की किस्में (अ.उ.कि.) जो स्थानीय पर्यावरण के अनुकूल हैं देश में उपलब्ध हैं। 1971–74 के दौरान मध्य प्रदेश में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि देशी किस्मों में से 8 प्रतिशत अधिक उत्पादकता की किस्में हैं अथवा उनकी उत्पादकता 3705 किग्रा. धान प्रति हेक्टेयर से ऊपर है।

इसे ध्यान में रखते हुए अ.उ.कि. को पुनः परिभाषित करना आवश्यक है, क्योंकि अब तक सरकारी स्तर पर उनकी पहचान विदेशी, बौनी, अधिक रसायनिक खाद का उपभोग करने वाली किस्मों के सन्दर्भ में की गई है।

चावल उत्पादकता बढ़ाने के एक राष्ट्रीय संवाद में केन्द्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (केचअस) में चावल कार्यकर्ताओं ने सहमति प्रकट की, 'अब समय आ गया है कि एक विशेष पर्यावरण के लिए अ.उ.कि. को पुनः परिभाषित किया जाए।'

डा. रिछारिया ने जोर देकर लिखा है, 'अब इसमें और देर नहीं करनी चाहिए कि देश का वर्ष 1964–65 का प्रजनन कार्यक्रम, जो कई वर्ष तक लगभग वहीं रोक कर रखा गया है, को पुनः लागू किया जाए। उस समय विशिष्ट समस्याओं, कठिन स्थितियों के लिए प्रजनित व बीमारियों, विनाशक जन्तुओं से प्रतिरोधक शक्ति रखने वाली लगभग 445 सुधारी गई किस्में उपलब्ध की गई थीं, जो अभी तक उपलब्ध होंगी। अभी बहुत देर नहीं हुई है मुख्य रूप से चावल के हमारे अपने आनुवंशिक संसाधनों पर आधारित व इस कार्यक्रम में बताई गई रणनीति, , स्वीकार की जानी चाहिए। इसमें यह विचार भी निहित है कि देशी जनन द्रव्य से उसके संकरित रूप में चावल उत्पादकता बढ़ाने की अच्छी संभावनाएं हैं।

देशी चावल किस्मों में चयन या आनुवंशिक सुधार का कार्य कटक स्थित केन्द्र चावल अनुसंधान संस्थान छोड़ने के बाद भी डा. रिछारिया ने जारी रखा व वर्ष 1978 तक 1500 सुधरी किस्में व 11 कम्पोस्ट उपलब्ध कराए।

चावल उत्पादकता बढ़ाने के लिए देशी जनन द्रव्य पर आधारित अनुकूलित चावल की किस्मों के अनुवंशिक सुधार व उनसे ऊंची उत्पादकता प्राप्त करने पर डा. रिछारिया ने जोर दिया।

अनुसंधान व प्रसार दोनों क्षेत्रों में डा. रिछारिया अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण को महत्व देते थे। यह धान के पौधों की अपनी विशिष्टताओं के कारण भी अनिवार्य है। उनके शब्दों में, "करोड़ों के लिए भोजन देने वाले चावल के पौधों की यदि सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बतानी हो तो यह इसकी (भारत व अन्य चावल उगाने के क्षेत्रों में फैली) हजारों किस्मों में जाहिर विविधता है।" अतः उन्होंने चावल उगाने वाले पूरे क्षेत्र में 'अनुकूलन चावल केन्द्रों' का एक जाल–सा बिछा देने का सुझाव दिया है।

"अनुकूलन चावल केन्द्र' अपने क्षेत्र से एकत्र (इसमें अनुसंधान केन्द्रों में पहले से एकत्रित, उपलब्ध यहां की किस्मों को भी लिया जा सकता है) सभी स्थानीय चावल की किस्मों के अभिरक्षक होंगे। भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए इन्हें अपने प्राकृतिक माहौल में ही जीवित रखा जाएगा।"

इन केन्द्रों के कार्य ये होंगे –

(क) चावल के विकसित आनुवंशिक संसाधनों को भविष्य के अध्ययनों के लिए उपलब्ध कराना इसे इसके मूल रूप में भारत या बाहर के किसी केन्द्रीय स्थान पर सुरक्षित रखना तो लगभग असंभव है। इसे इसके मूल रूप में तो किसानों के सहयोग से इसके प्राकृतिक माहौल में ही सुरक्षित रखा जा सकता है।

(ख) युवा किसानों को अपनी आनुवंशिक सम्पदा के मूल्य व महत्त्व के विषय में शिक्षित करना व उनमें किस्मों का पता लगाने, एकत्र करने की रूचि जागृत करना।

अपने विस्तृत अनुभव के आधार पर डा. रिछारिया बताते हैं कि चावल क्षेत्रों में मुझे ऐसे किसान मिलते ही रहे हैं जो चावल की अपनी स्थानीय किस्मों में गहन रूचि लेते हैं व अलग–अलग किस्मों की उपयोगिता, यहां तक कि उसका इतिहास बता सकते हैं। इन केन्द्रों की जिम्मेदारी ऐसे चुने हुए, प्रतिबद्ध किसानों को सौंपी जाएगी। हजारों किस्मों की पहचान करने, उन्हें सुरक्षित रखने की उनकी जन्मजात प्रतिभा का लाभ वर्तमान व भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उठाना चाहिए।

अपने अनुभव के आधार पर डा. रिछारिया ने लिखा है कि इस तकनीक के प्रसार में महिलाओं का बहुत महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। बरौंदा (रायपुर के पास) स्थित चावल अनुकूलन अनुसंधान केन्द्र में उन्होंने नोट किया कि महिला कर्मचारी नए विचारों व विधियों को बहुत शीघ्र समझती थीं।

सुधरी किस्मों को तेजी से फैलाने के लिए कृन्तक प्रसार विधि बहुत उपयोगी हो सकती हैं। उड़ीसा में व अन्य स्थानों में इसके सफल प्रयोग हो चुके हैं। किसी भी चावल की किस्म की उत्पादकता इस विधि से बढ़ाई जा सकती है।

ऊपर बताए गए रास्ते को अपनाने में देर नहीं करनी चाहिए, क्योंकि डा. रिछारिया ने यह चेतावनी भी दी है कि जिस तरह विदेशीय बौनी किस्मों को फैलाने व स्थानीय किस्मों को गायब करने के प्रयास चल रहे हैं उस कारण शायद हमारी यह आनुवंशिक विरासत भी भविष्य में हमें उपलब्ध न रहे।

■

भारत डोगरा
सी–27 रक्षा कुंज, पश्चिम बिहार
नई दिल्ली– 110063
फोन : 25255303

खाद्य सुरक्षा के लिए गृहवाटिका

सुमन सहाय

केरला में, राज्य सरकार द्वारा की गयी हरित शहर की पहल गति पकड़ रही है। शहरी क्षेत्रों में रहने वाले परिवार ''छत की बागवानी'' जैसे अभ्यास को अपनाते हुए फलों व सब्ज़ियों को उगाकर अपने परिवार की पोषण की जरूरतों को पूरा करने में सहायक हो रहे हैं।

कोच्चि की अपनी हाल की यात्रा के दौरान, मैंने अपने होटल की खिड़की से बाहर होटल की चहारदीवारी से सटे एक मामूली घर को देखा, जिसमें अहाता भी था। पहले जिस तरह के पारम्परिक घर गांवों में हुआ करते थे, यह घर बहुत कुछ वैसा ही खुला हुआ था, परन्तु अब तो इस तरह के खाली स्थानों पर घर बना कर पारिस्थितिकी व कुछ स्थानों की सुन्दरता को नष्ट किया जा रहा है। कोच्चि शहर के मध्य में मेरे पड़ोसी निश्चित तौर पर कुछ मुल्यों के साथ एक पारम्परिक परिवार हैं। उन्होंने अपने अहाते में दीवाल के किनारे एक कटहल, दो कटहल जैसे ही, परन्तु कटहल के पेड़ो से भिन्न फलदार वृक्ष, तीन सुपारी के वृक्ष एवं उन पर चढ़ी मिर्च की शाखाएं, दो नारियल के वृक्ष, एक अमरूद का पेड़, एक सहजन का पेड़, गुड़हल के फूलों से चटनी बनाने के लिए उसके दो पौधे, रतालू की दो झाड़ियां और केले की बौनी प्रजाति के लगभग 10 पेड़ लगा रखे हैं। पेड़ों के बीच के स्थान पर उन्होंने मिर्च और टमाटर तथा एक या दो अन्य पौधे भी लगा रखे हैं, जिन्हें मैं नहीं पहचानता हूं। अहाते का कुल परिक्षेत्र लगभग 300 वर्ग गज होगा।

मैं स्पष्ट रूप से एक परिष्कृत गृहवाटिका के इस मॉडल को देखकर रोमांचित था, जिसमें इतने कम स्थान में ही एक परिवार को मसाले सहित भोजन की आवश्यकता पूरी करने के साथ ही सुपारी एवं शेष बचे केले से वर्ष भर आय भी मिलती है। फलदार वृक्ष उपजाऊ होते हैं और कई महीनों तक फल देते रहते हैं। इन्हें कटहल की तरह न केवल सब्ज़ी के रूप में, वरन् रतालू की तरह मुख्य भोजन के तौर पर भी इस्तेमाल करते हैं। केरला में आज भी कन्द को भोजन में मुख्य रूप से शामिल किया जाता है। भिन्न जटिलता वाले कुछ बगीचे परिवार की खाद्य सुरक्षा के साथ ही पोषक मूल्य बढ़ाने के लिए एक मुख्य रणनीति के तौर पर हो सकते हैं। परिवार की खाद्य के लिए कुछ अन्य पूरक खाद्यों तथा वर्ष भर चावल आधारित मानक भोजन की आवश्यकता को दूसरे किसान के खेत से अथवा बाजार से पूरा किया जाता है। एक गृहवाटिका की संरचना स्थान विशेष के आधार पर बदलती रहती है और यह बहुत कुछ उस क्षेत्र में उगने वाले पौधों/फसलों/ पेड़ों तथा स्थानीय लोगों द्वारा खाने में दी जाने वाली प्राथमिकता पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, उत्तरी भारत के बहुत से भागों में, कुछ गृहवाटिका में सहजन, फली एवं ऐसे पत्तों को लगाया जाता है, जिससे परिवार को लगभग वर्ष भर पोषण मिलता रहे। केला, पपीता, नीबू, शकरकन्द एवं अन्य दूसरी जड़ वाली फसलें, कद्दू आदि ऐसे फल एवं सब्ज़ियां हैं, जो विटामिन से भरपूर होती हैं। कुछ दलहनी फसलें जैसे लोबिया, सेम और मूंग और शायद एक कटहल का पेड़ जरूर गृहवाटिका में रहता है। बगीचे में लगाये जाने वाले पौधे/पेड़ जगह की उपलब्धता एवं पसन्दीदा खाद्य पर ही निर्भर करते हैं, लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि इससे परिवार की भोजन आपूर्ति समृद्ध होगी और परिवार को मिलने वाला पोषण भी इससे उन्नत होगा। गृहवाटिका का सबसे बड़ा लाभ यह है कि भोजन सीधा घर की महिला से जुड़ा होता है क्योंकि सामान्यतः महिला ही गृहवाटिका की देख–भाल करती है। अतः वह उन्हीं फलों/सब्जियों को प्राथमिकता देती है, जिसे वह रसोई घर में बेहतर ढंग से उपयोग कर सके और उससे पूरे परिवार को लाभ मिले।

केरल में, राज्य सरकार के औद्यानिक विभाग द्वारा एक अन्य बेहतरीन पहल के रूप में छत की वाटिका कार्यक्रम है, जिसे स्थानीय तौर पर हरित नगरी (ग्रीन सिटी) कार्यक्रम के रूप में जाना जाता है। मोटे तौर पर गृहणियों द्वारा अपनाये गये इस कार्यक्रम में सरकार ने घनी आबादी वाले शहरी क्षेत्रों में, जहां लोगों के घरों में अहाता अथवा खुला स्थान नहीं है, वहां पर छतों, बरामदों अथवा फ्लैट या घर के पास उपलब्ध अन्य स्थानों पर मिट्टी आदि के बर्तनों में सब्ज़ियां उगाने को उत्साहित कर रही है। औद्यानिक विभाग इसके लिए बीज, उर्वरक, बर्तन एवं यहां तक कि छत या बरामदे में इसे क्रियान्वित करने में सहयोग उपलब्ध कराता है।

इस पहल के परिणामस्वरूप लोगों को वर्श भर पकाने के लिए कुछ न कुछ सब्जियां मिलने लगी हैं और इस कारण यह काफी लोकप्रिय हो रहा है। ये सब्जियां स्वच्छ, जैविक एवं मांग पर आसानी से उपलब्ध होती हैं। इस वाटिका में जिस दिन जो सब्जी उपलब्ध होती है, घर की महिला वही पका लेती है। इस प्रकार आहार में विविधता की वजह से पूरे परिवार का पोषण भी सुनिश्चित होता है। जब घर के उपयोग से अधिक सब्ज़ियां हो जाती हैं तो घर की महिला इसे औद्यानिक विभाग द्वारा स्थापित दुकानों पर बेच भी लेती है। त्यौहारों जैसे ओनम के दौरान, जब सब्जियों की बहुत मांग रहती है, उस समय सब्जियों की आपूर्ति में इन बगीचों का न्यून लेकिन उल्लेखनीय योगदान होता है। इससे शहर में ताजी सब्जियों की आपूर्ति को बढ़ावा दिया जा रहा है और गृहणियां/घरों में रहने वाली महिलाएं छोटा–छोटा ही सही पर लाभ पा रही हैं। इस रोचक उद्योग को पूरे देश में सघन शहरी एवं अर्ध शहरी केन्द्रों में दुहराया जा सकता है। सभी राज्य केरला की तरह इतने भाग्यशाली तो नहीं हैं, जहां पर वर्ष भर आसानी से खेती करने के लिए अनुकूल मौसम उपलब्ध होते हैं लेकिन राज्य अपनी स्थानीय मौसम परिस्थितियों को समायोजित करने के लिए कुछ विशिष्ट पैकेजों पर काम कर सकते हैं।

अप्रैल, 2012 में एशियन एज में प्रकाशित मूल लेख ''खाद्य सुरक्षा के लिए गृहवाटिका'' का यह संपादित अंश है। ■

सुमन सहाय
संयोजक, जीन कैम्पेन
जे०–235/ए, लेन डब्ल्यू–15सी, सैनिक फार्म्स, नई दिल्ली– 110062
ई–मेल : suman@genecampaign.org

Family farming and nutrition
LEISA INDIA, Vol. 16, No.4, December 2014

बेरो, झारखण्ड में लघु परीक्षण प्रक्षेत्र

स्थानीय बीज प्रणाली से समृद्ध होती खाद्य सुरक्षा एवं खेत अनुकूलन

एम. कार्तिकेयन एवं सी.एस.पी. पाटिल

छोटे व मोटे अनाजों के बीच प्रजाति विविधता में ह्रास की प्रवृत्ति देखी जा रही है। जबकि सरकार द्वारा की जा रही प्रजातिगत सुधार अनुसंधान शायद ही उन तक पहुंचती हो, जिसे उसकी आवश्यकता है। गैर सरकारी संगठनों द्वारा कुछ प्रयास अवश्य किये जा रहे हैं, परन्तु वे छिट-पुट हैं और बहुत छोटे पैमाने पर किये जा रहे हैं। इन सभी संस्थानों को न सिर्फ एक साथ लाने की आवश्यकता है, वरन् इस तरह से भी काम करने की आवश्यकता है कि स्थानीय बीज प्रणालियों को संरक्षित और पोषित किया जाये। प्रजातिगत सुधार अनुसंधान की दिशा में स्थानीय बीज प्रणाली को मजबूत बनाने की दिशा में रेसमिसा (RESMISA) माडल एक प्रयास है।

छोटे–मोटे अनाज पौष्टिक होते हैं, इनकी पोषक गुणवत्ता उच्च होती है, ये खाद्य एवं चारे की आवश्यकता को पूरा करते हैं, इनमें लागत कम लगती है तथा ये कार्बन उत्सर्जन भी कम करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि दक्षिणी एशिया क्षेत्र में अपने लम्बे इतिहास के कारण इनका उल्लेखनीय सांस्कृतिक मूल्य है। इन बहुआयामी लाभों के बावजूद, प्रजातियों की विविधता में कमी आने के कारण इस क्षेत्र में मोटे अनाजों की खेती का क्षेत्र घटा है। पिछले दो दशकों में, भारत के विभिन्न क्षेत्रों में छोटे–मोटे अनाजों की अन्तः एवं अन्तर्खेती की प्रजातियां लुप्तप्राय हो गयी हैं। राष्ट्रीय कृषिगत शोध प्रणाली से किये गये विभिन्न प्रजातिगत शोध भी इन अनाजों का कृषि क्षेत्र नहीं बढ़ा पाये हैं।

वर्तमान में भारत में राष्ट्रीय कृषिगत शोध प्रणाली एकमात्र ऐसा संस्थान है, जो प्रजातिगत सुधार पर मुख्य रूप से केन्द्रित है और इसने बहुत सी संस्तुतियां की हैं। एक तरफ जहां ये शोध,

प्रत्येक परियोजना स्थल में तीन वर्षों की अवधि के अन्दर ही प्रजातिगत विविधता में वृद्धि हुई, जबकि एक पारम्परिक प्रजनन कार्यक्रम में उन्नत बीजों तक समुदाय की पहुँच बनाने के लिए 8–10 वर्षों की आवश्यकता होगी।

खेतों से बहुत दूर स्थित शोध केन्द्रों पर किये गये हैं जिसमें किसानों की सहभागिता बहुत ही कम रही है। उल्लेखनीय है कि इन अनाजों की मुख्य तौर पर खेती किये जाने वाला क्षेत्र बहुत सीमित है। दूसरी तरफ सुदूर क्षेत्रों में किसानों के साथ काम कर रहे, खेत में स्थानीय प्रजातियों के संरक्षण को ध्यान में रखकर काम करने वाले स्वैच्छिक संगठन भी बहुत कम हैं। इनके द्वारा किये जाने वाले कार्य क्रिया विशिष्ट एवं परियोजना विशिष्ट होने के कारण इनका विस्तार बहुत सीमित होता है। इन दोनों के अतिरिक्त गांवों में औपचारिक बीज प्रणालियां भी चलती हैं। ये प्रणालियां खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने में एक आवश्यक भूमिका निभाती हैं। विश्व स्तर पर आनुवांशिक विविधता में तेजी से कमी आने के कारण जैव विविधता संरक्षण के केन्द्र में है। जब ये सभी तीन प्रणालियां एक निश्चित ढांचे में आत्म निर्भर होकर काम करते हुए अपनी स्वयं की मजबूती से एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, तब प्रकृति में परिपूर्णता आती है। यहां पर इन दोनों को एक साथ लाने और उन्हें सशक्त करते हुए उनमें ताल–मेल बिठाने की आवश्यकता है ताकि वे आवश्यक प्रजातिगत सुधार लाते हुए खेती के क्षेत्र में मोटे अनाजों की विविधता को बढ़ायें।

इन पूरक भूमिकाओं के एकीकरण की आवश्यकता पर समझ बनाने के लिए, एक गैर सरकारी संगठन धान के प्रयास से दक्षिण एशिया के वर्षा आधारित क्षेत्रों में छोटे मोटे अनाजों का पुनर्उत्पत्तिकरण (रेसमिसा) नामक परियोजना के तहत् एक एकीकृत माडल तैयार किया गया।

यह परियोजना आई.डी.आर.सी. और डी.एफ.ए. टी.डी., कनाडा के द्वारा सी.आई.एफ.एस.आर.एफ. के अन्तर्गत अनुदानित थी। परियोजना का प्रारम्भ वर्ष 2011 में हुआ और यह भारत के अलग–अलग कृषि–जलवायु क्षेत्रों तमिलनाडु राज्य में 3 तथा उड़ीसा एवं झारखण्ड में एक–एक, कुल पांच स्थलों पर चार छोटे, मोटे अनाजों – मडुआ (रागी), सांवा, टांगुन व कोदो पर मुख्य रूप से केन्द्रित था। परियोजना ने एक ऐसे मंच का निर्माण किया, जहां पर किसान व उनके संगठन जैसे संघ/स्वयं सहायता समूहों के संगठन, धान फाउण्डेशन के कार्यकर्त्ता एवं वैज्ञानिक तथा तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक एवं आई.सी.ए.आर. के ''अखिल भारतीय समन्वित लघु मोटे अनाज के सुधार हेतु परियोजना'' से जुड़े लोग अध्ययन के पाठ्यक्रम के माध्यम से निरन्तर संवाद और चर्चा को उन्नत बना सकें। किसानों की सहभागिता एवं नेतृत्व से परियोजना को निर्देशित करने का कार्य किया गया ताकि जेण्डर संवेदी वैज्ञानिक एवं सहभागी पद्धति के माध्यम से पारम्परिक जानकारी प्रणाली को तैयार कर पूरा किया जाये।

रेसमिसा मॉडल

रेसमिसा माडल खेत पर संरक्षण, सहभागी प्रजातिगत चयन एवं समुदाय आधारित बीज प्रणाली का समन्यन है। (प्रवाह चार्ट देखें) स्थलों में प्रजातिगत विविधता की वर्तमान स्थिति एवं बीज प्रसार प्रणाली पर समझ बनाने के साथ ही परियोजना का प्रारम्भ किया गया। प्रत्येक अध्ययन स्थल पर खेती की जा रही केन्द्रित फसलों की प्रजातियों की खोज के लिए प्रक्षेत्र सर्वेक्षण, अनुप्रस्थ काट भ्रमण एवं स्थानीय किसानों के साथ चर्चा व जैव विविधता पर प्रतियोगिता आदि विभिन्न उपकरण अपनाये गये। यह जैविक विविधता प्रखण्डों और स्थानीय प्रजातियों की आकारिकी विशेषताओं

एनचेट्टी तमिलनाडु में रागी प्रजातियों का आकलन

के अनुरूप है। प्रजातियां लोकप्रियता एवं विलुप्त होने के आधार पर पहचानी एवं वर्गीकृत की गयीं। जब नोडल किसानों के माध्यम से विलुप्त होने वाली प्रजातियों के खेत पर संरक्षण पर विशेष जोर दिया जा रहा था, उसी समय कुछ लोकप्रिय प्रजातियों की स्थानीय स्तर पर जांच करने के लिए सहभागी प्रजाति चयन के माध्यम से परीक्षण किया गया। सहभागी प्रजाति चयन में किसानों के खेतों में उपयुक्त सामग्री की स्वीकार्यता पर प्रयोग, मूल एवं लघु परीक्षणों के साथ अनौपचारिक अनुसंधान एवं विकास भी शामिल हैं। सहभागी प्रजाति चयन से निकले वरीयता में शामिल प्रजातियों को बृहद विस्तार एवं प्रोत्साहन तथा विलुप्त हो रही स्थानीय प्रजातियों के खेत पर संरक्षण को सामुदायिक बीज प्रणाली में प्रमुखता से स्थान दिया गया।

प्रजातिगत विविधता एवं बीज प्रणालियां

यद्यपि कि स्थलों में मोटे अनाजों की बहुत सी प्रजातियां थीं, फिर भी चार फसलों वाले प्रत्येक अध्ययन क्षेत्रों में अधिकांश लोगों द्वारा दो से अधिक प्रजातियां नहीं ली जा रही थीं। सभी स्थलों में टोला स्तर पर प्रजातिगत विविधता बहुत सीमित थी। यह परिस्थिति स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि स्थलों में प्रजातिगत विविधता को बढ़ाने की आवश्यकता है।

इसके अलावा, 90 प्रतिशत से अधिक किसान मोटे अनाजों के खेतों में ही सुरक्षित बीजों का उपयोग करते हैं। वे प्रजातियों के मिश्रण हेतु बीज प्रजाति प्रक्रिया का अनुपालन नहीं करते हैं। इन परिस्थितियों में प्रजातिगत सुधार एवं प्रजातिगत विविधता बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत किसान के स्तर पर प्रजातियों को वरीयता देने तथा सामान्य गुणवत्ता वाले बीज चयन प्रणाली को किसानों के बीच प्रोत्साहित करन के स्तर पर अधिक विकल्पों को तैयार करना सबसे अच्छी रणनीति होगी। वरीयता प्राप्त

खेत पर संरक्षण, प्रजातिगत सुधार एवं स्थानीय उपलब्ध बीज प्रणालियों का एकीकृत माडल

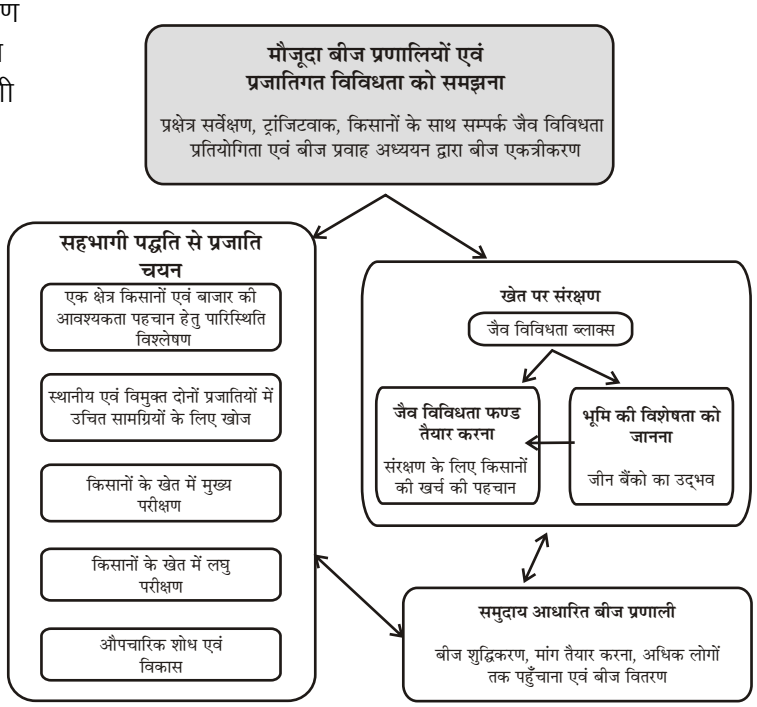

प्रजातियों के अधिक विकल्पों को तैयार करने के लिए स्थलों में सहभागी बीज चयन करने का प्रयास किया गया।

सहभागी प्रजाति चयन

प्रत्येक मोटे अनाज की पारम्परिक एवं विमुक्त प्रजातियों को शामिल करते हुए 8–10 विश्वसनीय प्रजातियों का एक सेट तैयार किया गया, जो वांछनीय परीक्षण हेतु किसानों की वरीयताओं के आधार पर चयनित था। वर्ष 2011 एवं 2012 में किसान प्रबन्धन अभ्यासों के माध्यम से प्रत्येक स्थलों में किसानों के खेतों में इन प्रजातियों का आंकलन किया गया।

तालिका 1 : अध्ययन स्थलों पर लघु मोटे अनाजों में प्रजातिगत विविधता का स्तर

परियोजना स्थल	वर्तमान प्रजातियों की संख्या		लोकप्रिय प्रजातियाँ	
	पारम्परिक	विमुक्त	संख्या	नाम
टांगुन				
एनचेट्टी	2	3	2	जी.पी.यू. 28 (आर),आई.एन.डी.ए.एफ..5 (आर)
बेरो	4	–	2	डेम्बर (टी), लोहरदगिया (टी)
जवाधू हिल्स	2	–	1	मुट्टन केलवागरू (टी)
सेमिली गुदा	19	2	4	बारी (टी), माटी (टी), कालाकरेंगा (टी), सुनामनी (टी)
सांवा				
जबाधू हिल्स	9	–	3	सिट्टन (टी), कारूसिट्टन (टी), वेला समाई (टी)
सेमिली गुदा	8	2	1	बड़ा सांवा (टी)
.....				
पेरईयार	3	–	1	सदाई (टी)
कोदो				
पेरईयार	4	–	1	सिरू बरागू (टी)

आर– विमुक्त/छोड़ी गई प्रजाति, टी– पारम्परिक प्रजाति

यह जानना आवश्यक है कि इन प्रजाति परीक्षणों में तकनीक विशषज्ञों के दिशा–निर्देश में धान फाउण्डेशन के प्रशिक्षित क्षेत्र कार्यकर्त्ताओं द्वारा मूल परीक्षण किया गया। इस पूरी प्रक्रिया में औसतन 15–20 किसानों ने सहभागिता की और फसल को उगाने तथा कटाई के अतिरिक्त मूल्यांकन प्रक्रिया में भाग लेने की जिम्मेदारी निभाई। किसानों की प्राथमिकता एवं गुणात्मक विश्लेषण से प्राप्त परिणामों के आधार पर स्थलों के लिए यथोचित प्रजातियों का चिन्हीकरण किया गया। गुणात्मक विश्लेषण में, वृद्धि तथा उत्पादन मापदण्डों के आंकड़ा संग्रह एवं उसकी व्याख्या में मानक प्रक्रियाओं को अपनाया गया। जबकि प्राथमिकता विश्लेषण के लिए जांच में लिये गये प्रत्येक प्रजातियों के उपर महिला एवं पुरुष किसानों के अलग– अलग समूहों के साथ चर्चा कर प्राथमिकता अंक का उपयोग किया गया।

मुख्य परीक्षणों में प्रजातिगत मूल्यांकन के दो चक्रों से यह चिन्हित करना संभव हुआ कि सम्बन्धित स्थलों के लिए प्रत्येक फसल में 1 से 4 तक अधिक वरीय प्रजातियां हैं, जिनमें छूटी हुई एवं पारम्परिक दोनों प्रजातियां शामिल हैं (तालिका 1 देखें)। पुनः किसानों की प्रजातियों के विपरीत इन चिन्हित प्रजातियों के अलग–अलग प्रदर्शन का आकलन करने के लिए, किसान प्रबन्धित गतिविधियों के तहत् बड़ी संख्या में (34–64) किसानों के खेतों पर इनका लघु परीक्षण किया गया। प्रत्येक प्रजाति के लिए लिये गये खेत का आकार न्यूनतम 200 वर्ग मीटर था, जो मुख्य परीक्षण की तुलना में बड़ा था। प्रदर्शन के आधार पर अधिक स्थानीय किसानों द्वारा स्वीकृत की गयीं कुछ प्रजातियों का अन्तिम रूप से चयन कर अधिक किसानों तक पहुंच बनाकर उन्हें बड़े पैमाने पर विस्तारित तथा प्रोत्साहित करने का कार्य अनौपचारिक शोध एवं विकासात्मक गतिविधियों के अन्तर्गत किया गया।

इसीलिए, 3 वर्ष की एक छोटी अवधि में प्रत्येक परियोजना स्थल में प्रजातिगत विविधता को बढ़ाना सम्भव हुआ था। इसके साथ ही बड़ी संख्या में किसानों ने अपनी पसंद के बीजों का संकलन भी अपने पास कर लिया। यह पारम्परिक प्रजनन कार्यक्रम के विपरीत है, जिसमें कृषक समुदाय की उन्नत बीजों तक पहुंचन बनाने के लिए कम से कम 8–10 वर्ष का समय लगेगा।

खेत पर संरक्षण

एक फसल के स्थानीय आनुवांशिक संसाधन के संरक्षण हेतु, दो जैव–विविधता प्रखंडों को इच्छुक किसानों के खेतों में स्थापित किया गया। ये प्रखंड किसानों के स्वयं के क्षेत्रों में उपलब्ध प्रजातिगत विविधता के साक्ष्य को प्रदर्शित करते हुए किसानों के बीच जागरूकता उत्पन्न करने का एक माध्यम भी थे। फसल कटाई के दौरान चयनित पुष्पगुच्छों को एकत्र कर बीज की शुद्धता को बनाये रखा गया। इसके अलावा, इन प्रजातियों के बीजों की शुद्धता एवं रूपात्मक विशेषताओं के अध्ययन के लिए शोध केन्द्रों पर भी भेजा गया। आगे इच्छुक किसानों में खेत पर संरक्षण में सहयोग प्रदान करने के लिए, प्रत्येक परियोजना स्थल पर जैव विविधता कोष बनाने के लिए एक पहल करने का कार्य किया गया है।

समुदाय आधारित बीज प्रणालियां

परियोजना स्थलों पर स्थानीय समुदायिक संगठनों जैसे स्वयं सहायता समूहों एवं उनके संघों को इस प्रक्रिया में शामिल करने हेतु विशिष्ट प्रयास किये गये। प्रजातिगत विविधता के ह्रास से होने वाले नुकसान पर किसानों की समझ विकसित करने के लिए परीक्षण में शामिल किसानों का भ्रमण कार्यक्रम आयोजित किया गया। उन्हें जैव विविधता कोष के प्रबन्धन में भी शामिल किया गया। पिछले कुछ वर्षों में अर्जित अपनी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की वजह से स्वयं सहायता समूहों के संघ / संगठन सहभागी प्रजातिगत प्रणाली से निकले वरीयता प्राप्त प्रजातियों के खेत पर संरक्षण को बढ़ावा देने की जिम्मेदारी लेने की स्थिति में हैं। शोध स्थलों के विभिन्न भागों में बने इन स्वयं सहायता समूहों से इच्छुक परीक्षण किसानों को मिलाकर रेसमिसा शोध समन्वयन समिति नाम से एक किसान समूह का गठन किया गया। रेसमिसा शोध समन्वयन समिति की मुख्य जिम्मेदारी सतत् रूप से गुणवत्तापूर्ण बीजों का उत्पादन, बीज शुद्धिकरण एवं बीज प्रसारण करना होगी।

सीख

एकीकृत माडल कई पहलुओं में अद्वितीय है। यह एक ऐसा माडल है, जहां बड़ी संख्या में किसान (578 पुरूष व 333 महिला) पूरी प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में शामिल थे, जिससे लोगों को अपनी प्रत्येक क्रिया के पीछे स्थित मूलभूत एवं साधारण सिद्धान्तों के बारे में समझ बनाने में मदद मिली।

वैज्ञानिकों और किसानों को एक साथ काम करने का अवसर मिला, जिसके कारण एक–दूसरे के अनुभवों को बेहतर ढंग से समझने व प्रशंसा करने के कारण अर्थपूर्ण परिणामों की प्राप्ति हुई। यद्यपि कि एक प्रजाति की श्रेष्ठता का आकलन करने का मुख्य आधार उत्पादन था, इसलिए परीक्षण करने वाले किसानों ने एक प्रजाति को स्वीकारने से पहले कई दूसरे परीक्षणों / प्रदर्शनों जैसे फसल अवधि, परिपक्वता के समय अनाजों के न बिखरने, एक समान परिपक्वता एवं अच्छे चारा उत्पादन आदि के आधार को भी संज्ञान में लिया। विशेष रूप से महिला किसानों ने अनाज की गुणवत्ता के लक्षणों जैसे रंग, स्वाद, अनाज की कठोरता एवं गुणवत्ता रखने में विशेष रूप से महिला किसानों ने अधिक ध्यान दिया।

अनुभवों से यह सिद्ध हो चुका है कि आम तौर पर औपचारिक प्रणाली में उपेक्षित हो चुकी पारम्परिक प्रजातियां आज भी किसानों की आवश्यकता को पूरा करने की क्षमता रखती हैं। सहभागियों के समन्वयन ने राज्यों से बाहर जाकर इसके विस्तार को संभव कर दिया है, जिससे दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले किसानों के सामने भी प्रजातियों के विकल्प उपलब्ध हैं। माडल ने स्वयं सहायता समूहों जैसे सूक्ष्म गतिविधियों की मौजूदा

एनचेट्टी तमिलनाडु में एक महिला किसान प्राथमिक विश्लेषण करती हुई।

विकासात्मक गतिविधियों के साथ एकीकृत प्रजातिगत उन्नति एवं प्रजातिगत विकास को भी संभव कर दिया है। यह संभव कर दिया है कि जो कि सामान्यतः औपचारिक प्रणाली द्वारा उपेक्षित हो जाती हैं।

किसानों की उभरती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रजातिगत उन्नति एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यद्यपि कि परियोजना में यह एक अवधि विशेष का कार्यक्रम होता है। सामुदायिक बीज प्रणालियों के माध्यम से परियोजना अवधि के बाद भी इसे ठीक इसी तरह चलाने की गुंजाइश है। आगे यह माडल राष्ट्रीय कृषि शोध प्रणाली की औपचारिक शोध की मुख्य धारा में क्षमतावान स्थानीय प्रजनकों के समायोजन और औपचारिक व अनौपचारिक बीज प्रणालियों के बीच उत्पादक समन्वयन के लिए अवसर प्रदान करता है।

खेत पर संरक्षण, सहभागी बीज प्रणाली एवं सामुदायिक बीज प्रणालियों के एकीकरण से प्रजातिगत उन्नत में प्रभावी परिणाम मिल सकते हैं और लघु मोटे अनाजों की प्रजातिगत विविधता बढ़ सकती है। बहु हितभागियों जैसे किसान संगठन, विकास संगठन और शोध संस्थान आदि मिलकर इस एकीकृत माडल के क्रियान्वयन के लिए अपना सहयोग दे सकते हैं। आगे वर्तमान शक्ति समीकरणों से ऊपर उठकर एक सफल सहयोगी संगठन के लिए प्रभावी क्रियात्मक सह–सम्बन्ध बनाने के लिए जेण्डर संवेदी कृषक प्रधान सहभागी शोध विधि तंत्र एवं इसी तरह के अन्य क्रिया–कलाप आवश्यक हैं।

यह दृष्टिकोण विभिन्न प्रकार की भौगोलिक दशाओं तथा फसलों के लिए उपयुक्त है। औपचारिक निजी बीज प्रणाली एवं अन्य राज्य द्वारा अनुदानित फसल सहयोग प्रणालियों में क्षमतावान पारम्परिक प्रजातियों को शामिल करने तथा किसानों के अधिकारों को उनके लिए सुरक्षित करने हेतु विभिन्न प्रकार के सहयोगियों के सहयोग के लिए समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता की पहचान करते हुए लघु किसानों के परिवारों की आजीविका संवर्धन में ऐसे संगठनों के निर्माण की आवश्यकता है।

एम कार्तिकेयन धान फाउण्डेशन, भारत में वर्षा आधारित कृषि विकास कार्यक्रम के कार्यक्रम प्रभारी, रेसमिसा परियोजना समन्वयक तथा मुख्य खोजकर्त्ता हैं।

सी. एस. पी. पाटिल कृषिगत विज्ञान विश्वविद्यालय, बंगलौर, भारत के भूतपूर्व मुख्य वैज्ञानिक हैं।

सन्दर्भ

गिल, टी.बी., बेट्स, आर., बिक्सलर, ए., बरनेटे, आर., रिसियार्दी, वी. एवं योदर, एल., दक्षिणी पूर्वी एशिया में खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए अनौपचारिक बीज प्रणालियों को सशक्त करना, कृषि जर्नल, खाद्य प्रणालियां एवं सामुदायिक विकास, 2013, 3 (3), 139–153

Cultivating farm biodiversity
LEISA INDIA, Vol. 16, No.1, March 2014